दक्षिण भारत की काव्य कथाएँ



पढ़ें और सीखें योजना

दक्षिण भारत की काव्य कथाएँ

पढ़ें और सीखें योजना

दक्षिण भारत की काव्य कथाएँ

र. शौरिराजन
विभागीय सहयोग
रामजन्म शर्मा

विद्यया S मृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

1929 — दक्षिण भारत की काव्य कथाएँ

ISBN 978-93-5580-023-7

प्रथम संस्करण
अक्तूबर 1990 कार्तिक 1912

पुर्नमुद्रण
मार्च 2023 चैत्र 1945

PD 2T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1990

₹ 50.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 से प्रकाशित तथा श्री वृंदावन ग्राफ़िक्स प्रा. लि., ई-34, सैक्टर-7, नोएडा - 201 301 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट धनकल बस स्टॉप पिनहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*अनूपकुमारराजपूत*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*विपिन दिवान*
मुख्य संपादक (प्रभारी)	:	*बिज्ञान सुतार*
संपादक	:	*आशीष सिंहा*
संपादन सहायक	:	*शर्मा दत्त*
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	*दीपक जैसवाल*

आवरण चित्रांकन
कर्ण कुमार चढ्ढा

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले चौबीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किंतु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा प्रणाली है जिनमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स से बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बालकों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है, जिनमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएंगी। हम आशा करते हैं कि 1990 के अंत तक हिंदी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें
(ख) कथा साहित्य
(ग) जीवनियाँ
(घ) देश-विदेश परिचय

(ङ) सांस्कृतिक विषय
(च) वैज्ञानिक विषय
(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके इसे अंतिम रूप दिया जाएगा।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये अपने देश के सभी कोनों में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भांति ही परिषद् की इस योजना का भी स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के लिए श्री र० शौरिराजन ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया, जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता करता हूँ।

परिषद् में यह योजना प्रो० अनिल विद्यालंकार (अवकाश प्राप्त) के मार्ग दर्शन में चल रही थी। अब प्रो० अर्जुन देव इसे देख रहे हैं। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा० रामजन्म शर्मा, डा० सुरेश पाण्डेय, डा० हीरालाल बाछोतिया और डा० अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का कार्य हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डा० रामदुलार शुक्ल देख रहे हैं। योजना का संचालन में डा० बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

के. गोपालन
निदेशक

नई दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

विषय क्रम

प्राक्कथन

1. नूपुर का न्याय	V
2. मणिमेखला	12
3. किशोर राजा का फैसला	23
4. दानी कुम्णन	29
5. नेत्रदान	36
6. मन में बना मंदिर	43

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

M. Gandhi

1

नूपुर का न्याय

बहुत पुरानी बात है। आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले तमिलनाडु कई राजा-महाराजाओं के शासन में था। उनमें प्रमुख राजा थे चेर, चोल और पांडेय। इनमें से चोल राज्य व्यापार, धंधा, शिक्षा और कला में आगे था। उस जमाने में चोल राज्य की राजधानी पूम्पुहार नामक नगरी थी जो बंगाल की खाड़ी तट पर अब भी है। उसे अब कावेरी पूम्पट्टिणम भी कहते हैं। यह कावेरी नदी के महाने पर समुद्र के किनारे बसा हुआ है।

पूम्पुहार शहर बड़ा व्यापार-केंद्र था। यहाँ एक बड़ा बंदरगाह था। विदेशों से कई व्यापारी अपने जहाज लेकर इस बंदरगाह में आते थे और अपना व्यापार चलाते थे। भारत के अन्य प्रदेशों के व्यापारी भी यहाँ आया करते थे। इससे भारत के माल का आयात और निर्यात बढ़ता था।

इस पूम्पुहार नगर में कई धनी व्यापारी रहते थे। उनमें से एक थे माशात्तुवान जो बड़े उदार सुशील व्यक्ति थे। उनके एक पुत्र था जिसका नाम था कोवलन उसकी आयु सोलह साल की थी। समाज में कोवलन का बड़ा नाम और मान था।

उसी नगर में मानायकन नाम के धनी और दानी व्यापारी थे। उनकी एक सुंदर और सुशील बेटी थी, जिसका नाम कण्णकी था। वह बारह साल की थी। माशात्तुवान और मानायकन दोनों वणिक अच्छे मित्र थे। उन दोनों ने चाहा कि आपसी रिश्ता पक्का हो जाए, इसलिए निश्चय किया कि कोवलन के साथ कण्णकी का शुभ विवाह कराया जाए।

कुलगुरु से निवेदन किया गया। उनकी स्वीकृति मिल गई। ज्योतिषी की सलाह पर एक शुभ दिन में कोवलन और कण्णकी का विवाह निश्चित हो गया। इस शुभ

समाचार को सुहागिन स्त्रियों ने एक सजे-धजे हाथी पर होदे में बैठकर नगर भर में घोषित किया।

वह शुभ दिन आया। नगर का वह मुहल्ला जहाँ दोनों वणिक परिवार रहते थे, खूब सजाया गया। मेहमानों और बारातियों की आवभगत खूब हुई। दान-पुण्य का बड़ा आयोजन था। मंगलवाद्यों की शुभ ध्वनि के बीच कोवलन और कण्णकी का विवाह हुआ कण्णकी अपने ससुराल में प्यारे पति के साथ आनंद से रहने लगी।

कोवलन कला और सौन्दर्य का प्रेमी था, भावुक कलाकार था, कण्णकी सहनशील, पतिव्रता स्त्री थी, उसके मधुर स्वभाव और कोमल व्यवहार से कोवलन बहुत खुश था।

कोवलन ने प्यारी पत्नी से कहा, "कण्णकी। मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ, इसलिए तो तुम जैसी उत्तम नारी को पत्नी के रूप में पा सका हूँ।"

कण्णकी ने पति को सुखी रखने में कोई कसर उठा नहीं रखी।

माता-पिता ने कोवलन और कण्णकी को नये भवन में अपना परिवार चलाने का पुरा इंतजाम कर दिया। उनका विचार था कि कोवलन अपने पैरों पर खड़ा होकर व्यापार वाणिज्य में विकास करें।



कुछ साल बीत गए।

राजधानी पूम्पुहार नगर में चित्रावली नाम की प्रसिद्ध नर्तकी थी। वह बहुत धनी थी, उसकी इकलौती बेटी माधवी को बचपन से ही संगीत, नृत्य और साहित्य में बड़ी रुचि थी। वह बहुत सुंदर थी। वह बारह साल की आयु में ही संगीत, साहित्य और नृत्यकला में बड़ी निपुण साबित हुई। उसका कला शोधन अद्‌भूत था।

पूम्पुहार नगर में उस सुंदर नर्तकी माधवी की धूम मचने लगी। उसके नृत्य का पहला कार्यक्रम चोल राजा के दरबार में होने वाला था। नगर के गणमान्य व्यक्ति

उसमें बुलाये गए थे। उनमें कोवलन और उसके पिता भी थे। दरबारी लोग भी जमे हुए थे।

मंगल गान से कार्यक्रम शुरू हुआ। उस गान में ईश्वर वंदना के साथ-साथ चोल राज्य, राजा और प्रजा की मंगल कामना थी। साज-बाज के साथ नृत्य प्रारंभ हुआ। गायक-गायिकाएँ मधुर पद गाने लगे और उनके अनुसार भाव-भंगिमा दिखाकर नर्तकी माधवी नाचने लगी। दर्शक बहुत खुश होने लगे।

कलाप्रेमी कोवलन सामने बैठा हुआ नृत्य देख रहा था। वह नर्तकी की तारीफ करते हुए वाह-वाह करने लगा। नर्तकी माधवी को इससे प्रोत्साहन मिल रहा था। दोनों की आँखें बार-बार मिलती थीं। सुंदर और सुशिक्षित नवयुवक कोवलन में अद्‌भुत आकर्षण था। माधवी तो अनुपम सुंदरी थी ही।

वह पहला नृत्य समारोह पूरा हुआ। तभी दर्शकों ने माधवी की तारीफ की। चोल राजा ने माधवी को एक मणिमाला भेंट की और 1008 स्वर्ण-मुद्राएं देकर उसे राजनर्तकी घोषित किया। उस जमाने की यह रीति थी कि राजनर्तकी को जो व्यक्ति अपनी प्रेमिका बनाना चाहता, उसे 1008 स्वर्ण मुद्राएं देकर मणिमाला खरीद लेना पड़ता। उस मणिमाला को पहनकर ही वह माधवी के साथ रह सकता था।

दूसरे दिन कोवलन ने एक हजार आठ स्वर्णमुद्राएँ भेजकर मणिमाला खरीद ली। उसे पहनकर माधवी के भवन में चला गया। माधवी की भी मन की मुराद पूरी हुई। वह अपनी कुल देवता से प्रार्थना कर रही थी कि सुंदर और सुशिक्षित वणिक पुत्र कोवलन ही मेरा प्रेमी बने। उसने कोवलन का बड़े प्यार से स्वागत किया, आदर-सत्कार किया, दोनों आनंद के साथ रहने लगे।

कोवलन ने माधवी को नृत्यकला में विकास करने की प्रेरणा दी। नृत्य समारोहों का आयोजन किया। अन्य नगरों में ले जाकर माधवी के नृत्य का प्रदर्शन कराया। इस तरह कोवलन अपना घरबार, परिवार सब छोड़कर माधवी के साथ रहने लगा। कोवलन ने अपने हिस्से की सम्पत्ति माधवी पर लुटा दी।

बड़े लोग भी कोवलन को समझाकर थक गये। प्यारी पत्नी कण्णकी के भेजे संदेशों का भी उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह परेशान रहने लगी। मान-मर्यादा का विचार कर वह अपनी वेदना सह लिया करती थी।

माधवी और कोवलन सुखी जीवन बिता रहे थे।वह कोवलन की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखती थी। माधवी ने एक सुंदर बच्ची को जन्म दिया। कोवलन ने

अपनी बेटी का नाम मणिमेखला रखा जो उसकी कुल देवी का नाम था।

कुछ समय बीत गया।

पूम्पुहार नगर के दो भाग थे। एक का नाम मस्वूर पाक्कम था, जो समुद्र के किनारे बसा था। इस भाग में विदेशी व्यापारी बड़े-बड़े महलो में रहते थे। उनमें यूनान के लोग अधिक थे। भारत के इतर प्रदेशों से आए हुए व्यापारी भी इस भाग में रहते थे। सब लोग मिल-जुलकर स्नेह और सहयोग से अपना व्यापार चलाते थे। यहां के बाजारों में सुगंधित वस्तुएं, रंगबिरंगे फूल, जड़ी-बूटियाँ, रेशमी और सूती कपड़े, हीरे-जवाहरात, स्वर्णा-भरण, लौंग, इलायची, खजूर आदि वस्तुएँ अधिक बिकती थीं।

इस नगर भाग में मछुआरे, बढ़ई, राज मिस्त्री, कुम्हार, शिल्पी, कारीगर, चित्रकार, सुनार, दर्जी, गायक, कलाकार आदि सभी कामकाजी लोग रहते थे।

दूसरा नगर भाग था पट्टिनप्पाक्कम। यहाँ चोल राजा का महल था। राजपरिवार के बड़े लोगों के भवन थे। विद्वान, पंडित, ज्योतिषी, वैद्य, वेदपाठी आदि लोगों की वीथियाँ थीं। राजमहल से जुड़े हुए परिजनों की बस्तियाँ भी यहीं थीं।

इन दोनों नगर भागों के बीच में नालागाड़ी नाम का छायादार पेड़ों से भरा विशाल मैदान था। यहाँ अक्सर मेला, उत्सव, और समारोह होते थे। यहाँ एक देवता का मंदिर था जो देवेन्द्र का प्रतिनिधि माना जाता था। हर साल इस मंदिर के सामने इंद्र-पूजा बड़े वैभव के साथ होती थी। यह पूजा-उत्सव अट्ठाईस दिन तक चलता था। चैत्र मास की चित्रा पूर्णिमा के दिन वह पूजा-उत्सव पूरा होता था। उस दिन समुद्र तट पर विशेष समारोह होता था। राजा और प्रजा उत्साह से उस पूजा-उत्सव में भाग लेते थे।

इन्द्र-पूजा के उत्सव का दिन था। नगर और आसपास के लोग वहाँ उत्सव मनाने के लिए इकट्ठे हुए थे। स्त्रियों ने वहाँ के देवता के लिए पकवान बनाकर चढ़ाया। बाद में वे टोली बनाकर नाचने लगीं पुरुष अपने प्रिय राजा की मंगल कामना करते हुए तरह-तरह की पूजा करते और सामूहिक नाच-गान में शामिल हो जाते।

उत्सव के दिनों में उस प्रदेश के शिव, विष्णु, दुर्गा, बुद्धदेव, महावीर स्वामी, इंद्रदेव आदि के देवालयों में पूजा-पाठ, कथावाचन, नाटक, संगीत के कार्यक्रम होते थे। पूरे प्रदेश में उस पर्व त्यौहार और उत्सव का आनंद छाया हुआ था।

सड़कों, गलियों और वीथियों में गायक-गायिकाएँ मोहक प्रेमगीत गाते हुए घूम रहे थे। बच्चे किलकारियाँ भरकर खेल-कूद रहे थे। पूरा वातावरण आनंद और उल्लास से भरा हुआ था।

कोवलन और माधवी दोनों ने उत्सव में भाग लिया। कई प्रकार के कार्यक्रम, प्रदर्शन और उत्सवों की झाँकी लेते हुए दोनों समुद्र तट पर आकर बैठे। कोवलन मधुर कंठ का सधा हुआ गायक था। माधवी तो गाने बजाने और नाचने में माहिर थी ही। उस सुहावनी संध्या में दोनों को गाने और गाना सुनने की इच्छा जाग उठी।

पहले कोवलन ने वीणा बजाते हुए कावेरी नदी, समुद्र और प्रदेश के बारे में मधुर गीत गाए। बाद में उसने कुछ मोहक प्रेमगीत सुनाए। माधवी मुग्ध होकर सुन रहीं थी। सुनते-सुनते माधवी के मन में यह शक पैदा हुआ कि कोवलन अपनी किसी और प्रेमिका की याद में विरह गीत गा रहा है और मुझे चिढ़ाना चाहता है। इसलिए माधवी भी उसी ढंग के पुराने प्रेम-गीत गाने लगी। कोवलन का शक्की मन समझ बैठा कि यह और किसी प्रेमी की याद में गा रही है। तुरंत कोवलन गुस्से में आकर माधवी को खरी-खोटी सुनाने लगा। माधवी का स्वाभिमान इस अपमान को सह न सका। उसने कोवलन के शक्की मन की निन्दा की और अपने सच्चे प्रेम का विश्वास करने की प्रार्थना की। तब तक कोवलन अपना संतुलन खो चुका था। उसे घर की याद आ गई। अपनी प्यारी पत्नी कण्णकी के साथ किए अन्याय का बोध हुआ। पश्चाताप से उसका मन भारी हो उठा। वह तुरंत माधवी को छोड़कर अपने घर लौट आया।



पति को सामने पाकर स्नेहशील कण्णकी फूली न समाई। आदर के साथ उसका स्वागत किया। पति को उदास पाकर कण्णकी ने पूछा, "स्वामी! क्या बात है? अपनी प्रेयसी माधवी को भेंट करने को कुछ नहीं बचा है– इस चिंता में पड़े हैं, तो लीजिए ये मेरे दोनों नूपुर! ये बहुत कीमती हैं। इन्हें बेचने से आपको हजारों स्वर्णमुद्राएँ मिल जाएँगी।"

कोवलन पत्नी के पवित्र प्रेम को देखकर गद्‌गद हो गया। उसकी आँखे छल-छला उठीं। कोवलन लज्जित होकर कहने लगा, "देवी कण्णकी! दुर्भाग्य से मेरा दिमाग फिर गया था। सारी सम्पत्ति चली गई। मान मर्यादा चली गई। एक नर्तकी के मोह में पड़कर मैंने तुम जैसी पतिव्रता नारी का मन दुखाया। मुझे क्षमा करो।"

कण्णकी ने समझाया, "स्वामी! बीती बातों को भूल जाइए। आप प्रतिभाशाली हैं। अब भी अपना व्यापार शुरू करके आगे आ सकते हैं। मेरे सब आभूषण ले लीजिए। हम नया जीवन प्रारंभ करेंगे।"

कोवलन और कण्णकी ने सोच विचार कर निश्चिय किया कि वे यह चोल राज्य छोड़कर पांडिय राज्य की राजधानी मदुरै चले जाएंगे। वहाँ कण्णकी के मंगलचिन्ह नूपुरों में से एक को बेचकर नया व्यापार शुरू करेंगे।

दोनों ने बड़े लोगों से आशीर्वाद लेकर अपनी यात्रा शुरू की। उन्होंने पहले पूम्पुहार नगर के प्रमुख श्री कृष्ण मंदिर में जाकर पूजा-पाठ किया। बाद में जैन, बौद्ध मंदिरों में जाकर वंदना की और मदुरै की ओर चल पड़े।

रास्ते में दोनों एक बगीचे में आराम करने के लिए रुके! वहाँ एक सुंदर कुटिया थी। उसमें एक जैन साधवी तपस्या कर रही थी। उनका नाम कवुंती देवी था। कोवलन और कण्णकी ने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। कवुंती जी ने इन अतिथियों को आशीर्वाद दिया, भोजन कराया और आराम करने की सुविधा दी। कोवलन के मुँह से सारी बातें सुनकर कवुंती जी का मन पसीज गया। वे उन दोनों के साथ मदुरै नगर चलने को तैयार हो गईं।

साधवी कवुंती जी के सत्संग से कोवलन और कण्णकी की यात्रा सुखद रही। कई गाँवों, शहरों, कस्बों और बस्तियों को पार करते हुए तीनों मदुरै नगर की सीमा पर आ पहुँचे।तब माधवी का भेजा एक दूत वहाँ कोवलन से आकर मिला। वह कहने लगा, "श्रीमान! माधवी आपके बिछोह से बहुत दुखी हुई है। वह आपसे क्षमायाचना कर रही है। आपसे वापस लौट आने की प्रार्थना करती है। यह भी आपसे निवेदन करने को कहा है कि आपकी नन्हीं बेटी मणिमेखला भी बेचैनी से रोज आपकी राह देख रही हैं। माधवी ने तो जानबूझकर कोई अपराध नहीं किया है। उस अभागी पर तो आप दया कीजिये। उस दुखियारी को उबारिए।"

कोवलन शांत मन से बोला, "दूत! मैं पूर्व जन्म के बुरे कर्म का दंड भुगत रहा हूँ। अपने घर-परिवार का कर्तव्य मुझे निभाना है। माधवी के साथ बिताए सुखी दिनों की याद मेरे मन में हमेशा रहेगी। उसको मेरी शुभकामना कहो और यह भी बताओ कि उसके प्रति मेरे मन में घृणा नहीं है। भगवान उसका भला करें।"

माधवी का दूत यह संदेश लेकर लौट गया।

कवुंती देवी कोवलन और कण्णकी को मदुरै नगर के अंदर ग्वालों की बस्ती में ले गयी। वहाँ मादिरी नाम की स्नेहशील बूढ़ी ग्वालिन थी जो कवुंती देवी की भक्तिन थी। मादिरी ने तीनों का स्वागत किया और अपने घर में जाकर आदर-सत्कार किया।

कवुंती जी ने ग्वालिन मादिरी से कोवलन-कण्णकी की करुण कथा बताई और उनकी भरसक सहायता करने को कहा। बूढ़ी ग्वालिन ने खुशी के साथ मान लिया। कवुंती जी निश्चिन्त होकर अपने काम पर चली गईं।

ग्वालिन मादिरी ने सब सुविधाओं के साथ कोवलन और कण्णकी के रहने का प्रबंध कर दिया। दूसरे दिन कण्णकी से एक नूपुर लेकर कोवलन उसे बेचने के लिए शहर गया। रास्ते में एक बिगडैल बैल अपने पैने सींगों को तानकर कोवलन की ओर झपटा। सौभाग्य से कोवलन बाल-बाल बच गया। लेकिन उस वक्त वह दुखी होकर सोचने लगा कि यह अपशकुन है।

कोवलन आगे बाजार की ओर चलने लगा। संयोग से मार्ग में राजदरबार के सुनार से मुलाकात हुई। वह रोबीला सुनार अपने परिजनों के साथ आ रहा था। कोवलन उससे मिला और उससे अपनी मदद करने का अनुरोध किया। उस दरबारी सुनार के हाथ में अपना नूपुर देकर कोवलन ने कहा, "यह मेरी पत्नी का मांगलिक नूपुर है। इसके अंदर कीमती माणिक भरे हैं। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप इसको उचित मूल्य पर बेचने में मदद करें।"

सुनार ने उस कीमती नूपुर को ध्यान से देखा और कुछ सोचने के बाद कहा, "श्रीमान्! यह नूपुर केवल पांडिय महारानी ही खरीद सकती हैं। आप थोड़ी देर यहीं ठहरिए। मैं अभी पांडिय महाराज को बताकर उनकी स्वीकृति के साथ लौटता हूँ।"

वंचक सुनार राजमहल में गया। जाते समय उसने अपने मन में सोचा-"यह नूपुर तो मेरे चुराए हुए महारानी के नुपूर जैसा ही है। पांडिय राजा के सामने इस आदमी को चोर बताकर मैं इसे मृत्युदंड दिलवा दूँगा। बाद में महारानी की कीमती नूपुर मेरी संपत्ति बन जाएगा।

इस कपटपूर्ण इच्छा के साथ वह वंचक सुनार राजमहल में पहुंचा। उस समय पांडिय राजा नडुचेलियन अपनी रूठी महारानी को मनाने रनिवास की ओर जा रहा था। सुनार ने उसके सामने जाकर प्रणाम किया और रानी के गायब हुए नूपुर के चोर को पकड़ लेने का झूठा हाल कह सुनाया। राजा तो उस समय महारानी को रिझाने की जल्दी में था। उसने राजधर्म और नीति न्याय को भूलकर दंडनायक को बुलाया और आदेश दिया, "महारानी का नूपुर चुराने वाले उस अपराधी को मार डालो। उस चोर से हमारा नूपुर छीनकर ले आओ। मेरी इस आज्ञा का आज ही पालन हो जाए।"

दंडनायक अपने वीरों के साथ सुनार के यहाँ आया। सुनार ने दंडनायक को कोवलन को दिखाया। दंडनायक ने कोवलन से पूछा, "क्या तुमने यह नूपुर इस सुनार के जरिए बेचने की कोशिश की है?"

"हाँ" कोवलन ने कहा। फिर भी दंडनायक को कोवलन का भोला-भाला और सुंदर मुख देखकर लगा कि यह भद्र पुरूष दीखता है। यह चोर कैसे हो सकता है? सुनार से दंडनायक ने अपना संदेह बताया और कहा, "यह तो कोई भला, कुलीन पुरुष दीख रहा है। यह चोर नहीं हो सकता। इसे मृत्युदंड देना अनुचित होगा।"

किंतु वंचक सुनार ने चोरों की चालबाजियों के बारे में लंबी-चौड़ी बातें गढ़कर और दंडनायक को समझाया कि रंगे हाथ पकड़े गए चोर को छोड़ देना बड़ा अन्याय है।

फिर क्या? दंडनायक के एक मनचले सिपाही ने तुरंत कोवलन पर तलवार चलाई। वहीं कोवलन का सिर धड़ से अलग हो गया। इस तरह राजा के आदेश का पालन किया गया।

दंडनायक भारी मन लेकर राजमहल में गया। उसने कोवलन से लिए गए नूपुर को महारानी के पास भेज दिया। धीरे-धीरे वह बुरा समाचार नगर के कोने-कोने में फैल गया।

दूसरे दिन सबेरे ग्वालों की उस बस्ती में तरह-तरह के बुरे अपशकुन दिखाई पड़े। इन अपशकुनों से भयभीत सब ग्वालिनों ने मिलकर अपने कुलदेवता श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए "कुरवैक्कूत्तू" नामक सामूहिक नृत्य-गान का उत्सव मानाया।

बूढ़ी ग्वालिन मादिरी नदी घाटी पर नहाने आई थी। वहीं पर उसे कोवलन के मारे जाने का समाचार स्त्रियों के द्वारा मिला। सुनते ही वह पागल-सी दौड़ती हुई अपनी बस्ती में आई। कोवलन की हत्या की बात सारी बस्ती में फैल गई। पतिव्रता कण्णकी ने जब

सुना, तो वह चीखती हुई जमीन पर गिर पड़ी और बेहोश हो गई। थोड़ी देर बाद कण्णकी होश में आ गई। वह वीरांगना की तरह उठ खड़ी हुई। उसका दिल दहक उठा, क्रोध से उसका शरीर काँप उठा। वह सूर्य को देख जोर से चिल्ला उठी, "हे सर्वसाक्षी सूरज! तुमसे पूछती हूँ, जवाब दो! क्या मेरे पतिदेव चोर थे?"

पतिव्रता की आज्ञा पर सूर्य देव ने कहा, "देवि! तुम्हारा पति चोर नहीं था। चोरी का झूठा आरोप लगाकर उसे मार डाला गया। इस पाप के कारण यह मदुरै नगर तुम्हारी क्रोधाग्नि में जलकर राख हो जाएगा।"

इस सूर्य-वाणी को बस्ती के निवासियों ने भी सुना और कण्णकी तथा कोवलन का जय-जयकार किया। कण्णकी अपने दूसरे नूपुर को हाथ में लेकर बाजार की तरफ चली। उसके साथ बस्ती के कई लोग चले आए।

दुर्घटना-स्थल पर पतिव्रता कण्णकी जा पहुँची। खून से लथपथ अपने पति के शव को कण्णकी ने देखा उस मृत देह से लिपटकर वह रो पड़ी। कुछ देर के बाद वह उठ खड़ी हुई, क्रोध और दुख के साथ राजभवन की ओर चली।



उस समय महारानी पिछली रात को देखे हुए बुरे सपने के बारे में महाराज से बात कर रही थी। अचानक अपने सामने शोक और क्रोध की सजीव मूर्ति कण्णकी को देख पांडिय नरेश स्तब्ध रह गए। फिर हड़बड़ाते हुए पूछने लगे, "तुम कौन हो? यहाँ क्यों आयी हो? क्या चाहती हो तुम?"

कण्णकी ने आँसू पोंछकर, रोती-बिलखती हुई सारा हाल कह सुनाया। पांडिय राजा अपनी न्याय निष्ठा पर गर्व करते हुए बोले- "तुम्हारा पति अपराधी था, चोर था, इसीलिए उसे उचित दंड दिया गया।"

कण्णकी रोष के साथ चिल्ला उठी, "मेरे पति चोर नहीं थे। न्याय और नीति का गला घोंटने वाले तुम ही अपराधी हो, चोर हो। इस बात को साबित करने के लिए ही मैं यहाँ आई हूँ। मेरे नूपुर के भीतर माणिक्य रखे हुए हैं, यही नूपुर उनके पास था। तुम अभी जाँच लो।"

राजा ने दृढ़ता से कहा, "नहीं, महारानी के नूपुर में मोती भरे हुए हैं, वही नूपुर तुम्हारे पति ने चुराया था। मेरे पास सबूत है।"

यह कहते हुए राजा ने उसी समय कण्णकी के सामने उस नूपुर को रख दिया जो कोवलन से बरामद किया गया था। कण्णकी ने क्रोधित होकर उस नूपुर को हाथ में उठाया और जोर से जमीन पर पटक किया। आघात से नूपुर के टुकड़े-टुकड़े हो गए। उसमें से चमकीले माणिक उछलकर पांडिय नरेश के मुंह पर जोर से लगे। सत्य का वह प्रत्यक्ष रूप देखकर पांडिय राजा का सिर चकराया, उनके हाथ से न्यायदंड फिसल पड़ा। वह असहनीय पीड़ा से तड़प उठे। पश्चाताप और लज्जा से वह तिलमिला उठे।

"हाय! एक पापी सुनार की झूठी बात पर विश्वास करके अपने नीतिधर्म को भूलनेवाला मैं राजगद्दी के योग्य नहीं हूँ। कोवलन चोर नहीं था मैं ही उसका प्राण लेवा चोर हूँ। अब मैं जीने योग्य नहीं रहा।" आत्मवेदना में इस प्रकार विलाप करते हुए पांडिय राजा मूर्छित होकर गद्दी से गिरे पड़े और वहीं उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

पतिव्रता महारानी कण्णकी के चरणों पर गिर पड़ीं। उन्होंने अपने पति के द्वारा किए गए अपराध के लिए क्षमा याचना की। बाद में वह पति के शव के साथ ही सती हो गई। फिर भी कण्णकी का क्रोधानल शांत ही नहीं हुआ। उसने अग्नि देवता को आदेश दिया, "पापी, अत्याचारी लोगों का सर्वनाश करो। पूरे नगर को जला दो।"

सारा नगर देखते-देखते आग की लपेट में आ गया। निर्दोष प्रजाजन जान बचाकर भाग निकले।

तब मदुरै की नगरदेवी कण्णकी के सामने आकर बोलीं-कण्णकी देवी! इस पांडिय

राज्य का कोई भी राजा बुरा शासक नहीं रहा। यह नेडुचेलियन भी अच्छा शासक ही था, जो अब मरा है। फिर भी इस अन्याय का कारण बताती हूँ। पूर्व जन्म में, कपिलपुर में भरतन नामक एक नगरपालक था। उसने संगमन नामक एक निरपराध वणिक को शत्रु का गुप्तचर समझकर राजाज्ञा से मार डाला। उस वणिक की सती पत्नी नीली देवी शोक से तड़पती हुई चौदह दिनों तक भटकती रही। नीली ने पहाड़ के शिखर पर चढ़कर वहीं से नीचे कूदकर आत्महत्या कर लेने का निश्चय किया। वह मरते समय यह शाप दे गई कि मेरे निरपराध पति को मारने वाले अपराधी को अगले जन्म में इसी तरह का दंड मिलना चाहिए। वही नगरपालक भरतन इस जन्म में तुम्हारे पति कोवलन के रूप में पैदा हुआ था। तुम भी चौदह दिन के बाद अपने पति से मिलोगी और उनके साथ स्वर्ग लोक को चली जाओगी।''

यह सुनकर कण्णकी के संतप्त मन को थोड़ी सांत्वना मिली। वह सीधे दुर्गा के मंदिर गई। वहाँ देवी के सामने अपने हाथ की चूड़ियाँ फोड़ डालीं। वहीं उसने शपथ खाई, ''माँ दुर्गे! जब तक मैं पतिदेव के दर्शन न करूँ, उनसे न मिलूँ, जब तक कहीं न रुकूँगी।'' फिर वह मदुरै के पश्चिम द्वार से निकल कर बाहर चली गई।

मदुरै नगर की देवी की भविष्यवाणी सच निकली। कण्णकी भी उस विधवा नीली देवी की तरह इधर-उधर भटकती हुई चेर देश (केरल) के एक पहाड़ पर पहुंच गई। वह अपने पति का स्मरण कर रो पड़ी और उससे मिने की प्रतीक्षा करने लगी।

इतने में देवताओं की पुष्पवर्षा के बीच आकाश से एक सुन्दर विमान उतर आया। उसमें देव के समान चमकता हुआ कोवलन मुस्कराते हुए विराजमान था। उसने स्वयं अपने हाथों से कण्णकी को विमान पर चढ़ाया और अपने साथ उसे स्वर्ग ले गया।

□□



2

मणिमेखला

तमिलनाडु के पुराने मशहूर शहर पूम्पुहार में हर साल इन्द्रदेव का उत्सब बड़ी धूमधाम से मानाया जाता था। यह व्यापार केन्द्र कावेरी नदी के मुहाने पर, बंगाल की खाड़ी के किनारे बसा हुआ था। यहाँ भारत के कोने-कोने से वणिक लोग आकर बसते थे। इसी नगर की निवासी थी-मशहूर नर्तकी माधवी, उसका प्रेमी वणिक-पुत्र कोवलन और उसकी पत्नी कण्णकी। इनके बारे में "नूपुर का न्याय" कहानी में पढ़ चुके हो।

पूम्पुहार नगर में कुछ वर्षों से इन्द्रदेव को प्रसन्न करने वाला उत्सव रुक गया था। इसके कारण उस प्रदेश में तरह-तरह के संकट होने लगे। बुजुर्गों ने वहाँ के शासक चोल राजा को सलाह दी कि आप इस साल इन्द्र पूजा का उत्सव पहले की तरह मनाने का इंतजाम करें, तभी हमारे संकट दूर होंगे।

चोल राजा ने पूरे प्रदेश में ढिंढोरा पिटवाया-"सब नगरवासी मिलकर देवराज इंद्र को प्रसन्न करने के लिए पूजा-पाठ के साथ उत्सव मनाएँ।" राजा का आदेश मानकर प्रजाजन उत्सव मनाने की तैयारी में लग गए।

चैत्र मास के एक शुभ दिन इन्द्रदेव का उत्सव बड़े पैमाने पर आरंभ हुआ। पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, नाच-गान, खेल-कूद, भोग चढ़ावा और प्रीति-भोज के साथ कई दिन तक यह त्यौहार मनाया गया। चोलराजा, युवराज उदयकुमार, राजपरिवार के लोग, वणिक जन, किसान-मजदूर, कलाकार आदि सब लोग इन्द्रपर्व में भाग ले रहे थे। लेकिन शोक, दुख और रोग से पीड़ित लोगों ने इस उत्सव में भाग नहीं लिया। दुखी और शोकाकुल लोगों में थी-प्रसिद्ध नर्तकी माधवी और उसकी नौजवान लड़की मणिमेखला।

माधवी को अपने प्राण के समान प्यारे प्रेमी कोवलन और उसकी पतिव्रता पत्नी



कण्णकी की मृत्यु पर बहुत दुख था। वह साज-शृंगार. नाच-गान, हँसी-खुशी सब छोड़ चुकी थी। विरागिन बनकर जी रही थी। सुंदर और सुशिक्षित युवती मणिमेखला को भी अपने प्यारे पिताजी कोवलन की मौत पर गहरा शोक और दर्द था। कोवलन को अपनी बच्ची से बहुत प्यार था। इसलिए उसका नाम मणिमेखला रखा। मणिमेखला उसकी कुल देवी थी।

इन्द्रोत्सव अट्ठाईस दिन तक चला। पूरा प्रदेश आनंद और उल्लास से भरा हुआ था। बच्चे, बूढ़े सब इस त्यौहार में भाग लेते थे। लेकिन माधवी और मणिमेखला ने एक दिन भी इसमें भाग नहीं लिया। पहले से ही लोग बड़े चाव से माधवी और मणिमेखला के मधुर गायन और मोहक नाच की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसलिए लोग निराश होकर माधवी पर व्यंग्य कर रहे थे।

खासकर चोलराजा के पुत्र उदयकुमार को बड़ी निराशा हुई। वह मणिमेखला के रूप-सौंदर्य और कला-कौशल का प्रेमी था। वह मणिमेखला से मिलकर अपना प्यार प्रकट करके उसे अपनी प्रेमिका बना लेने को तरस रहा था।

मणिमेखला तो अपनी माँ माधवी की तरह विरागी जीवन जीना चाहती थी। सुख-सुविधा और नाच-गान में उसकी दिलचस्पी नहीं थी। पूरा समय माँ के पास बैठकर धर्म का उपदेश सुनती थी। उसका इरादा था कि दुखी जनों की सेवा करने में अपना पूरा जीवन लगा दे।

एक दिन माधवी के पास चोल राजा का संदेश आया कि वह अपनी बेटी के साथ इन्द्रदेव के उत्सव में भाग लें। कला-प्रेमी नगर-प्रमुख भी आकर अनुरोध करने लगे। उसकी सहेली वसंतमाला तो रोज आकर मिन्नत करती थी। सबके लिए माधवी का एक ही जवाब था-"मुझे क्षमा करें।" मैं अभागिन दुखियारी औरत हूँ। मेरा जीना भी अब बेकार है। यह जीवन बस, एक आँखमिचौनी है। मुझे धर्म मार्ग पर जाने दीजिए।

सहेली वसंतमाला ने पूछा, "माधवी! यह सब क्यों? तुम तो कलारानी हो, तुम्हारा अनुपम कलाकौशल यों ही बेकार हो जाए? तुम्हारा सुंदर सुडौल शरीर सूखकर काँटा हो गया है। तुम्हें हो गया है?

माधवी की आँखे छलछला आईं। वह दुखी स्वर में बोली, "मेरे प्राणप्रिय प्रेमी को बिना किसी अपराध के मौत की सजा भुगतनी पड़ी। उनकी पत्नी कण्णकी जो मेरे लिए पूज्य देवी है, वह पति का वियोग सह न सकी, उसने अपनी जान दे दी। मेरी यह बेटी मणिमेखला उस देवी का ही प्रसाद है। मेरी बेटी को अपने पिताजी और बड़ी माँ कण्णकी का नाम रोशन करना है। इसलिए बिटिया को भोग-विलास से हटाकर सद्मार्ग पर ले चलना चाहती हूँ। मेरा पहला कदम है कि मैं साधु-संतों के मार्ग पर चलूँ और बेटी को सही रास्ता दिखा सकूँ।"

पास में बैठी हुई मणिमेखला माँ की बात ध्यान से सुन रही थी। माधवी ने आगे कहा, "मेरी प्यारी सहेली! मैं अभी कुछ दिन पहले बौद्ध धर्म को अपना चुकी हूँ। मैं सुप्रसिद्ध बौद्धाचार्य अरवण अडिगल के चरणों में बैठकर धर्मोपदेश पा गई हूँ। मैंने उनके दिखलाए गये धर्म मार्ग पर चलने का संकल्प किया है। लगाव और लालच के मारे आदमी बहुत तकलीफ उठाते है, दुख पाते हैं, तरह-तरह के अपराध करते हैं। जन्म और मरण के चक्कर में उलझ जाते हैं। इससे मुक्ति पाने के लिए महात्मा बुद्धदेव के उपदेशों पर चलना होगा। हम दोनों का यही इरादा है।"

सखी वसंतमाला हार मानकर चली गई। माधवी धुन की पक्की थी। बुद्धदेव के

पावन चरणों में चढ़ाने के लिए मणिमेखला फूल माला गूँथ रही थी। माँ की बातें सुनकर उसको अपने प्यारे पिता कोवलन की याद आ गई। उसका दिल दुख से भर गया। उसकी आँखों से छनके आँसू फूलमाला पर टपक रहे थे।

माधवी ने बेटी के आँसू पोंछ दिए। उसे सहलाती हुई बोली, "बेटी! यह माला अब पूजा के योग्य नहीं रही। इसलिए तुम बगीचे में जाकर नये फूल बीनकर लाओ।"

मणिमेखला अपनी सहेली सुधामति के संग फुलवारी में गई। रास्ते में लोग मणिमेखला को देखकर आह भरते हुए कहने लगे, "हाय, इतनी सुंदर लड़की जो नाच-गान में माहिर हे, जवानी में ही संन्यासिन बनने जा रही है! इसके बढ़िया कलाकौशल और मोहक रूप सौंदर्य बेकार होने जा रहे हैं। यह भी भाग्य का खेल है।"

पुष्पवन में छायादार पेड़ फैले हुए थे। ठंडी छाया बहुत आराम दे रही थी। हवा में फूलों की महक थी। भौंरे मधुर स्वर में गूँज रहे थे। एक ओर मोर नाच रहे थे, दूसरी तरफ बंदर इधर-उधर उछल-कूदकर खेल रहे थे। आम के पेड़ों पर कोयल कुहुक रही थी। चिड़ियाँ इधर-उधर उड़ती हुई चहक रही थीं।

उस सुंदर बगीचे के बीच में एक छोटा-सा तालाब था। उसमें कमल के फूल खिले हुए थे। कई जलपक्षी तैरते-खेलते दिखाई पड़े। मणिमेखला और सुधामती इन सुंदर दृश्यों को निहारती हुई फूल चुन रही थीं।



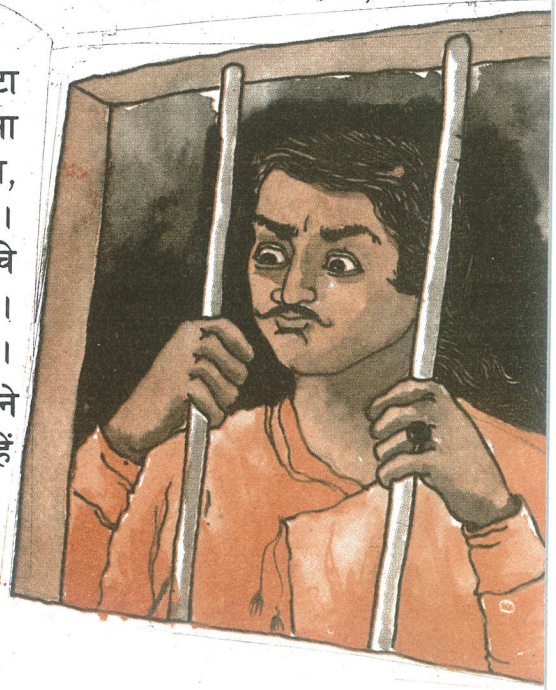
इतने में उस पुष्पवन के बाहर, घोड़ों की हिनहिनाहट और रथ के पहियों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी। जयजयकार का नारा भी गूँज उठा। मणिमेखला घबराहट के साथ सुधामति से कहने लगी, "मालूम होता है, राजकुमार मुझे ढूंढ़ता हुआ यहाँ आ रहा है। वह कई दिनों से मेरे पीछे पड़ा है। वह मुझे अपनाना चाहता है। सुख-भोग का जीवन मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। अब मैं क्या करूं?"

सुधामति ने सलाह दी, "मणिमेखला! देखो, वहाँ छोटा-सा विश्रामघर है, उसके अंदर तुम चली जाओ। मैं बाहर से दरवाजा बंद कर देती हूँ। युवराज उदयकुमार को मैं समझा-बुझाकर वापस भेज दूँगी। तुम चिन्ता न करना।"

मणिमेखला विश्रामघर के एक कमरे में जाकर छिप गई। बाहर दरवाजा बंद कर के सुधामति थोड़ी दूर पर फूल चुनने चली गई। उदयकुमार वहाँ आकर चारों ओर ढूँढ़ता फिर रहा था। निराश होकर सुधामति के पास आकर पूछने लगा, "तुम्हारी सहेली मणिमेखला कहाँ गई है? मैं कई दिनों से उससे मिलने की कोशिश कर रहा हूँ। पर वह बाहर आई ही नहीं। आज खबर मिली कि वह यहाँ आई है, तुरंत चला आया हूँ। लेकिन यहां भी वह नहीं मिली। बताओ, उसे क्या हो गया है? मैं तो उसे दिल से चाहता हूँ। तुम समझाओ उसे और मनाओ।"

सुधामति ने राजकुमार को समझाया, "युवराज! प्रेम का दीवाना मत बनो। मणिमेखला संन्यास ले चुकी है। उसने सांसारिक जीवन से मुक्ति पाने का निश्चय कर लिया हे। यह शरीर, यौवन और सौन्दर्य सब जल्दी ही मिटनेवाले हैं। मणिमेखला को अपनाकर तुम खुश नहीं रह सकोगे। जब उसका मन ही विरागी हो गया, तो उससे प्रेम करके क्या पाओगे?"

फिर भी राजकुमार का मोह छूटा नहीं। वह मणिमेखला को ढूँढ़ता हुआ विश्रामघर में गया। खिड़की से अंदर झांका, कमरे में मणिमेखला डरी-डरी खड़ी थी। उदय कुमार ने बहुत मिन्नतें कीं, अपने सच्चे प्यार का बखान किया, कई वायदे किये। फिर भी मणिमेखला ने दरवाजा नहीं खोला।



उदयकुमार गुस्से में आकर धमकी देने लगा, "तुम मेरी बात नहीं मानोगी, तो तुम्हें

जबर्दस्ती उठाकर ले चलूँगा।'' बेचारी मणिमेखला डर के मारे थर-थर काँपने लगी।

इतने में सुधामति वहाँ आ गई और उदयकुमार को चेतावनी दी, ''देखो, राजकुमार! यह पुष्पवन पवित्र स्थान है। यहाँ भगवान बुद्ध के चरणों का पद्मपीठ है। मणिमेखला बुद्ध देव की भक्तिन है। पद्मपीठ करने और फूल चुनकर माला गूँथने यहाँ आई है। इस पुनीत कार्य में तुम बाधा न डालो। तुम गड़बड़ करोगे, तो मणिमेखला तुम्हें शाप देकर नष्ट कर देगी। वह कोई मामूली लड़की नहीं।''

उदयकुमार का जोश ठंडा पड़ गया। वहाँ बुराई करने की हिम्मत नहीं हुई। शाप भय उसे डराने लगा। यह कहकर बाहर चला आया- ''मणिमेखला! तुम गणिका की बेटी हो और चोलराजा के पुत्र का प्रेम ठुकरा रही हो। मैं तुम्हें छोड़नेवाला नहीं हूँ।''

सुधामति ने दरवाजा खोल दिया। मणिमेखला बाहर आई। उसको डर सता रहा था कि पुष्पवन से निकलते ही राजकुमार पकड़कर ले जाएगा। उसने अपनी कुलदेवी मणिमेखला से प्रार्थना की ''माँ! मुझे संकट से बचाओ।''

कुलदेवी एक जोगिन के वेश में सामने आईं। दोनों को भगवान बुद्ध के मंदिर में ले गईं। वहाँ बुद्धदेव का स्फटिक पत्थर का बना पादपीठ था, जो ''पाद्मपीठ'' के नाम से प्रसिद्ध था। सुधामति ने सारा हाल जोगिन को कह सुनाया। जोगिन ने उनको बुद्धदेव की महिमा के बारे में कई घटनाएं बताईं। सुनते-सुनते दोनों लड़कियाँ वहीं सो गईं।

जोगिन अपनी दैवी शक्ति से मणिमेखला को लेकर आकाशमार्ग में चली और समुद्र पारकर मणिपल्लव नाम के टापु में छोड़ आई। बाद में वह सुधामति को जगाकर बोली, ''बेटी, तुम माधवी के पास जाकर कहो कि वह अपनी बेटी की चिंता न करे। वह मणिपल्लव द्वीप में सुरक्षित है। भगवान बुद्ध की कृपा से वह जनकल्याण करने की शक्ति पाकर यहाँ लौट आएगी। वह आज से सातवें दिन रात को नया जीवन और नया लक्ष्य लेकर यहाँ आ जाएगी।''

सुधामति ने पूछा, ''जोगिन जी, आपकी बात पर मैं कैसे विश्वास कर लूँ? फिर माधवी को कैसे विश्वास होगा?''

जोगिन ने अपना देवी रूप दिखाया और कहा, ''सुधामति! मैं कोवलन की कुलदेवी मणिमेखला हूँ। जिस दिन माधवी की बच्ची का नाम रखा गया, उसी दिन रात को मैंने माधवी के सपने में अपने दर्शन दिये थे। मैंने उससे कहा कि तुम्हारी बेटी मणिमेखला बड़ी तपस्विनी बनेगी, लोकहित की सेवा में लगी रहेगी और अमर यश पाएगी। सुधामति! तुम इस बात का स्मरण करा दो, तो माधवी को विश्वास हो जाएगा।''

यह कहकर देवी अदृश्य हो गई।

सुधामति ने जब यह बात माधवी को बताई, तब उसने विश्वास तो कर लिया, लेकिन बेटी के बिछोह से बहुत दुखी हुई। उसने मणिमेखला देवी की वंदना कर अपने दुख को सह लिया।

X X X

मणिमेखला की नींद खुली, तो उसने देखा कि सागर के किनारे रेतीली जमीन पर यह लेटी हुई है। पहले वह सकपकाई, फिर घबराने लगी। सूर्योदय हो रहा था।

सामने समुद्र था। आसपास दूर-दूर तक पेड़, पौधे, पहाड़, झरने, पक्षी के अलावा और कुछ दिखाई नहीं पड़ा। वह सोचने लगी कि यह कौन-सी जगह है? मैं यहाँ आई कैसे हूँ? मेरी सहेली सुधामति कहाँ है? वह जोगिन कहाँ चली गई?.....

मणिमेखला जोर से चिल्लाने लगी, "सुधामति! तुम कहाँ हो? जल्दी इधर आओ। मुझे बहुत डर लग रहा है।

वह चीख-पुकार कर थक गई। फिर वह इधर-उधर दौड़ती फिरी, कहीं कोई दिखाई न पड़ा। अपने माँ-बाप की याद आई तो दुख और बढ़ गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसने अपने आराध्य बुद्ध देव की वन्दना की। तभी उसे सामने चमकदार पादपीठ दिखाई पड़ा। वह भगवान बुद्ध के चरणों का था।

मणिमेखला आश्चर्य चकित हो गई। तुरंत उसने हाथ जोड़कर पादपीठ की तीन बार परिक्रमा की और माथा टेक कर प्रणाम किया।

तब जोगिन के वेश में मणिमेखला देवी सामने आई और बोलीं, "बेटी! मैं तुम्हारी कुलदेवी हूँ। तुम्हें मोह-माया से छूटकर लोकहितकारी सेवा में जुट जाने का अवसर आ गया है। मैं तुम्हें एक मंत्र का उपदेश देती हूँ। इसको जपते रहने से तुमको रोग, शोक और भूख-प्यास से छुटकारा मिल जाएगा।"

देवी से मंत्रोपदेश पाकर मणिमेखला को असीम आनन्द हुआ। उसके मन में यह विश्वास जम गया कि मैं लोकहित के योग्य बन गई हूँ।

मणिमेखला उस मणिपल्लव द्वीप के सरोवर, बाग-बगीचे, झरने और पहाड़ियाँ निहारती हुई घूम रही थी। साथ ही साथ कुलदेवी के बताये देवी मंत्र को जपती रही। घूम-फिरकर बुद्ध देव के पवित्र पादपीठ के पास लौट आई। वहीं बैठकर आराम करने लगी।

उस समय वहाँ एक सुंदर युवती आकर खड़ी हुई। मणिमेखला को आश्चर्य के साथ आनंद भी हुआ। उसने प्यार से उसका स्वागत किया और अपना हाल कह सुनाया।

वह सुंदरी बोली, "मणिमेखला! मेरा नाम द्वीपतिलका है। मैं इस टापू की रक्षा करने वाली देवी हूँ और यहाँ के बुद्ध देव के पादपीठ की पुजारिन भी। तुम बड़ी भाग्यशाली हो, इसीलिए तुम्हें इस पादपीठ के दर्शन हुए हैं। मामूली लोगों को यह पवित्र स्थल दिखाई नहीं पड़ता।"

मणिमेखला यह सुनकर बहुत खुश हुई। मन ही मन भगवान बुद्ध की वन्दना करने लगी। द्वीपतिलका को प्रणाम करके बोली, "देवी! मुझे यहाँ क्यों लाया गया है? मैं कब अपने घर लौट सकूँगी। तुम मेरी मदद करो देवी!"

"देवी ने प्रसन्न होकर कहा, "बेटी! आगे से तुम्हारा अपना कोई घर नहीं होगा। सारा देश तुम्हारा घर है, तुम महान् जन सेवा के लिए पैदा हुई हो। आज बड़ा शुभ दिन है। आज ही तुम नया जीवन लक्ष्य पाने वाली हो।"

"देवी! आज्ञा दो, मुझे क्या करना है।"

"बेटी! आज पुण्यपर्व है। बुद्ध जयंती का पावन दिन है-वैशाख पूर्णिमा। सामने वह गोमुखवाला सरोवर देख रही हो न? हर साल बुद्ध जयंती के दिन इस सरोवर में से एक अनूठा सुनहला अक्षय-पात्र निकल आता है। उसका नाम "अमृतसुरभि" है। उसमें एक बार भिक्षा लेने पर वह चीज बढ़ती ही रहती है-चाहे जितनी ही बाँटती रहो। वह अक्षय-पात्र आज निकल आएगा। उसे लेने का सौभाग्य तुमको मिलने वाला है। तुम उसके सहारे भूखे, गरीब लोगों को भरपेट खाना खिलाती रहो। अन्नदान सबसे बड़ा धर्म है, उत्तम पुण्यकार्य है।"

मणिमेखला के मन में कुतूहल जाग उठा। वह देवी के साथ भगवान बुद्ध के पादपीठ की परिक्रमा और वन्दना करने के बाद सरोवर में गई। उसने वहाँ स्नान किया और जल में खड़ी होकर मंत्र जपने लगी। इतने में एक बढ़िया सुनहला बर्तन पानी में से उभर आया और मणिमेखला के हाथों में लग गया। मणिमेखला ने आनंद विभोर होकर, बड़ी श्रद्धा के साथ अक्षय-पात्र अमृतसुरभि को अपना लिया। देवी द्वीपतिलका और कुलदेवी ने मणिमेखला को आशीर्वाद दिया। साथ ही यह उपदेश भी सुनाया-

"बेटी! तुम भाग्यशाली हो, जीव-जगत की भूख मिटाने की परम पावन सेवा तुम्हें भगवान ने सौंपी है। भूख ही सब से बड़ी भयानक बीमारी है। उसके शिकार हुए आदमी के मान, मर्यादा, शील, चरित्र, सुबुद्धि सब बिगड़ जाते हैं। पढ़ाई-लिखाई में मन नहीं लगता। भूख आदमी को कुरूप बना देती है। भूखे आदमी को कोई नहीं चाहता। भूख,

भूख आदमी को नहीं, उसके आसपास के लोगों को भी मुसीबत में डाल देती है। इसलिए इस बीमारी को दूर करना सबसे बड़ी सेवा है। भूख मिटाना जीवनदान कहलाता है। तुम अपने धर्मगुरू श्री अरवण अडिगल से आशीर्वाद लेकर इस महान धर्मकार्य में लग जाओ।''

देवी के प्रभाव से मणिमेखला अक्षय-पात्र के साथ पूम्पुहार नगर के उसी पुष्पवन में आ पहुँची, जहाँ से वह मणिपल्लव द्वीप को ले जायी गई थी। माँ माधवी और सहेली सुधामति को वहाँ पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई। मणिमेखला ने सारा हाल उनको सुनाया। माधवी को संतोष हुआ कि भगवान बुद्ध के अनुग्रह से मणिमेखला का जन्म सफल हुआ है और हमारा कुलगौरव ऊँचा हुआ है।

मणिमेखला अपनी माँ और सहेली के साथ बौद्ध भिक्षु अरवण अडिगल के आश्रम में गई। उनके चरणों में वंदना करके सारा वृतांत कह सुनाया।

धर्म गुरु बहुत प्रसन्न हुए। वे उपदेश देने लगे, ''बेटी! बड़े पुण्यफल से तुम्हें यह अक्षय-पात्र मिला। संसार का सबसे बड़ा धर्म यही है कि किसी को भूखा नहीं रखा जाए। तुम इस अमृतसुरभि के सहारे खूब अन्नदान करो। इसके पहले यह महान अक्षय-पात्र आपुत्रन को मिला जो ''गाय का बेटा'' कहलाता था। उसने जीवन-भर इसके सहारे अन्नदान कर भूखे लोगों की भूख मिटाई। अब तुम्हें यह सौभाग्य मिला है। तुम पहले एक पतिव्रता नारी के हाथ से भिक्षा ग्रहण करो। तुम्हारे पुण्यकार्य से जनता का कल्याण होगा।



मणिमेखला ने तपस्विनी का वेषधारण कर लिया। दूसरे दिन ही नगर की सामान्य पतिव्रता नारी चित्रादेवी के घर जाकर भिक्षा मांगी। चित्रादेवी ने अक्षय-पात्र अमृतसुरभि में अन्न, पकवान, साग-भाजी और फलों की भिक्षा देकर आशीर्वाद दिया उन्होंने कहा, ''पुण्यशाली तपस्विनी! तुम्हारी लगनभरी सेवा से मानव समाज में भूख का रोग मिट जाए और खाते-पीते धनी लोगों में अन्नदान करने की भावना फैले।''

मणिमेखला अन्नदान करने के लिए निकल पड़ी। एक अधेड़ उम्र की औरत उसके सामने आकर विनती करने लगी, "तपस्विनी! मेरा नाम कायचंडिका है। मैं भस्मक रोग से पीड़ित हूँ। जितना भी खाना खाऊँ, तुरंत हजम हो जाता है, जल्दी ही भुख भड़क उठती है। मैं बहुत परेशान हूँ। मैंने सुना है कि आप अक्षय-पात्र में से रुचिकर भोजन भरपेट खिलाने वाली हैं। सबसे पहले मेरी भूख मिटाइये।"

मणिमेखला ने भगवान बुद्ध का नाम लेकर कायचंडिका को अन्नदान दिया। वह खूब खाने लगी। उसकी भूख मिटी और भस्मरोग भी दूर हो गया। उसने मणिमेखला के चरण छूकर प्रणाम किया और प्रार्थना की कि, "मैं विद्याधर कुल की हूँ। वर्षों के बाद आपकी कृपा से भस्मक रोग से मुझे छुटकारा मिला हैं। मेरे पति कंचनदेव एक दो दिन में यहाँ आकर मुझे ले जाएँगे। तब तक मैं आपकी सेवा करती रहूँगी। आप मेरे साथ चक्रबाल मंदिर की धर्मशाला में रहेंगी।"

दोनों उसी धर्मशाला में रहने लगीं। मणिमेखला प्रतिदिन दीन-दुखियों और गरीबों को अन्नदान करती थी। उसने नगर के जेल-खाने में जाकर सभी कैदियों को अन्नदान किया और धर्मोपदेश दिया। इस प्रकार जल्दी ही मणिमेखला का नाम मशहूर हो गया।

चोलराजा के पुत्र उदयकुमार को पता चला कि मणिमेखला तपस्विनी बनकर जनसेवा में लगी हुई है और लोग उसका बड़ा आदर करते हैं। वह अब भी अपनी धुन का पक्का था कि जैसे भी हो, मणिमेखला को अपनी प्रेमिका बनाकर ही छोड़ेगा।

एक दिन रात को उदयकुमार धर्मशाला आया। उसने मणिमेखला से मिलकर अपना प्रेम मंजूर करने की विनती की। मणिमेखला ने साफ इन्कार कर दिया। राजकुमार गुस्से में आकर मणिमेखला को जबर्दस्ती उठा ले जाने लगा, तो वह जोर से चिल्ला उठी। उस समय वहाँ आये विद्याधर कंचनदेव ने इस अन्याय को रोकने के लिए उदयकुमार पर तलवार चलाई। उदयकुमार वहीं ढेर हो गया।

दूसरे दिन, राजा के सिपाही मणिमेखला को कैद कर राजमहल में ले गये। वहाँ के बड़े शानदार मंडप में राजा और रानी बैठे थे। उस सभागार की विशेषता यह थी कि मगध देश के जौहरी, महाराष्ट्र के सुनार, अवंती के लोहार और बढ़ई, यूनान के शिल्पी, तमिल प्रदेश के कारीगर सब लोगों ने मिलकर उसे बनाया था।

चोलराजा ने मणिमेखला का यश पहले ही सुन रखा था। राजकुमार की हत्या कैसे हुई, क्यों हुई-यह जानने के लिए उसे बुलाया था। मणिमेखला ने सारा हाल कह सुनाया।

राजा ने मणिमेखला से क्षमा मांगी और प्रार्थना की कि वह पहले की तरह ही अन्नदान करती हुई जनसेवा में लगी रहें। मणिमेखला की विनती पर राजा ने सभी कारागारों को धर्मशाला के रूप में बदल दिया। मणिमेखला अपराधियों को अच्छे नेक रास्ते पर लाई।

मणिमेखला जहाँ कहीं अकाल पड़ता, उस प्रदेश में जाकर भूखे जनों को अन्नदान कर उनका दुख दूर करती थी। जहाँ भी गई, उन स्थानों में बुद्ध देव के मंदिर बनवाये। लोगों में भक्ति, भाई चारा, उदारता, सेवा-भाव, और लगन जगाती रही। वह तपस्विनी नारी आखिरी दम तक जनसेवा और धर्मसेवा में लगी रही। मणिमेखला नाम अमर हो गया।

□□



3

किशोर राजा का फैसला

आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले तमिलनाडु का मध्य भाग चोल राज्य था। कई प्रतापी चोल राजाओं ने उस पर शासन किया था। उनमें राजा करिकालन का नाम अधिक प्रसिद्ध हुआ। वह वीर, प्रतापी शासक था, न्याय और धर्म की रक्षा में जागरूक था। प्रजा की समस्याओं को सुलझाने में वह निपुण था। प्रजा उसको बहुत चाहती थी, करिकालन को बचपन में ही राजगद्दी मिल गयी। यह तो भाग्य का फैसला था।

पिताजी के देहांत समय राजकुमार बालक था। राजसत्ता को पाने के लिए चोल राजपरिवारों में बड़ी होड़ चली। अधिकांश उत्तरदायियों का विचार था कि राजकुमार प्रमुख उत्तरदायी होने पर भी राजसत्ता नहीं सँभाल सकेगा। कुछ दावेदारों ने साजिश शुरू कर दी। उन लोगों ने राजकुमार और राजमाता को जान से मार डालने के लिए महल में आग लगवा दी। सौभाग्य से दोनों बच गये। उस समय आग की लपट से बालक का एक पैर थोड़ा झुलस गया और वह पैर काला पड़ गया। इसी कारण राजकुमार "करिकालन" (काले पैर वाला) नाम से मशहूर हुआ।

राजसत्ता के दाबेदार आपस में झगड़ रहे थे। कौन राजा बने-इस बात पर वे एकमत न हो सके। प्रमुख जननायकों ने निश्चय किया कि उस जमाने की रीति के अनुसार राजा का चुनाव किया जाए। एक शुभ दिन में, राज्य के प्रधान हाथी की सूंड में एक फूलमाला देकर राजगद्दी के उत्तरदायियों के सामने खड़ा किया गया। हाथी ने माला लेकर सबके सामने एक चक्कर लगाया और आखिर विजयमाला बालक करिकालन के गले में डाल दिया। बस, यह भाग्य का फैसला था। सब लोगों ने बालक को चोलराजा घोषित कर दिया।

राजतिलक का उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। राजकुमार करिकालन को राजा की वेष-भूषा पहनाकर प्रधान हाथी पर बिठाया गया और नगर के प्रधान मार्गों में शानदार जुलूस निकाला गया। प्रजाजन और दरबारी लोग बालक राजा की जय—जयकार के साथ स्वागत करते थे।

कुछ साल बीत गये।

सुयोग्य मंत्रियों और हितैषी बंधुओं की सहायता से किशोर करिकालन स्वयं राजकाज सँभालने लगा। उस जमाने में राजा ही न्यायाधीश का काम करते थे। अधिकांश फरियाद अभियोग, मामला आदि पंचायत के द्वारा निबटा लिये जाते थे। पंचायत की बैठकों में जिन मामलों का फैसला न हो पाता, वे राजा के पास पेश किये जाते थे।





एक दिन किशोर नरेश करिकालन के दरबार में एक विचित्र मामला फैसले के लिए पेश किया गया। दरबार में सामंत, मंत्री सेना-नायक, आचार्य, कवि, नगर प्रमुख आदि बैठे हुए थे। करिकालन राजगद्दी पर विराजमान था। मामले की सुनवाई शुरू होने वाली थी। वादी और प्रतिवादी को अपनी-अपनी दलील सुनने-सुनाने बुलाया गया।

किशोर राजा को देखकर वादी-प्रतिवादी दोनों सोच में पड़ गये कि यह अनाड़ी लड़का हमारे पेंचीदा मामले में सही फैसला कैसे कर पाएगा? इसी से वे बोले, "राजकुमार1 हम और कहीं जाकर इस मामले का निपटारा करा लेंगे। आपसे यह काम शायद ही हो सकेगा।"

करिकालन ने मुस्कराकर कहा, "महाशय! आपको न्याय पाने के लिए कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। कल ही दरबार में आपके मामले का फैसला सुनाया जाएगा। एक अनुभवी बुजुर्ग न्यायाधीश मेरे प्रतिनिधि होंगे। वे आपके मामले की सुनवाई करेंगे और फैसला सुनाएंगे।"

दोनों फरियादी खुश होकर चले गये। राजा की उदारता की सब लोगों ने प्रशंसा की। दूसरे दिन दरबार भरा हुआ था। राजगद्दी के पास ऊँचे आसन पर एक बूढ़े न्यायाधीश बैठे हुए थे। मामले की सुनवाई शुरू हुई। न्यायाधीश ने वादी से पूछा-आपका मामला क्या है? बताइये।"

वादी ने अपनी समस्या पेश की, "न्यायाधीश जी! मैंने प्रतिवादी महाशय से दो महीने पूर्व पाँच बीघे जमीन खरीदी। पूरी रकम लेकर इन्होंने मेरे नाम पट्टा भी लिखकर दे दिया। अभी एक सप्ताह पहले मैं जमीन जोत रहा था। तब हल की नोक एक कड़ी चीज से जा लगी। मैंने खोदकर देखा। वहाँ ताँबे की यह हांडी मिली। मैं इसे उठा लाया। खोलकर देखा तो मैं चकित रह गया। इसमें स्वर्णमुद्राएं और स्वर्ण आभूषण भरे हुए थे। मैंने सोचा, यह तो भाग्य का वरदान है। इसके असली हकदार ये प्रतिवादी महाशय हैं। इनसे मैंने केवल जमीन ही खरीदी, यह थाती नहीं खरीदी, इसीलिए मैं यह हाँडी लेकर

प्रतिवादी महाशय के घर गया और इनको सौंपने लगा। किंतु ये महाशय यह हांडी लेने से इंकार करते हैं। ये कहते हैं, "मैंने जमीन तुमको बेच दी है, तो उसमें से निकलने वाली सारी चीजों के तुम्हीं मालिक हो," चाहे वह पैदावार हो या खजाना।

"न्यायाधीश जी! यह कैसे हो सकता है? इनके पूर्वजों ने अपनी थाती को अपनी ही जमीन में गाड़कर रख दिया होगा। इस पर पूरा अधिकार इनका और इनके परिवार का है, मेरा नहीं। आप मेहरबानी करके यह थाती इनको सौंप दीजिए और मुझे इस बोझ से छुटकारा दिलाइये।

न्यायाधीश ने प्रतिवादी की तरफ देखकर कहा, "महाशय! आपकी दलील क्या है, बताइये!"

प्रतिवादी ने कहा, "न्यायाधीश जी! जब मैंने अपनी जमीन पूरी रकम लेकर इनको बेच दी और पट्टा लिखकर दे दिया, तो फिर उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं रह गया। उस जमीन में से फसल निकले या खजाना-मुझे उससे कोई लेना-देना नहीं है। यह हांडी तो इनके भाग्य का दिया वरदान है। लंबे अरसे से यह जमीन मेरे पास थी। अगर मुझे यह खजाना मिलना होता, तो क्या मेरी खेतीवाड़ी के समय न मिल जाता? इसलिए इस खजाने पर मेरा कोई अधिकार नहीं, इसे मैं ले नहीं सकता। आप इनको समझाइये कि ये ही इस थाती के अधिकारी हैं, इसे ले लें।"

न्यायाधीश ने जमीन का पट्टानामा देखा, हांडी को खुलवाकर उसमें रखी हुई चीजों को भी देखा। फिर वादी से उन्होंने पूछा, "यह खजाना लेने से तुम्हें लाभ ही तो होगा? फिर इंकार क्यों करते हो?"

वादी ने अपनी दलील दुहरायी, "न्यायाधीश जी! यह तो परायी सम्पत्ति है, मेरे परिश्रम का फल नहीं है, परायी चीज को अपनाना पाप है। मैं इसे ले नहीं सकता।"

न्यायाधीश ने प्रतिवादी को समझाया, "क्यों भाई! इनका कहना भी तो ठीक है। यह तो इनकी मेहनत की कमाई नहीं है। तुमने केवल भूमि ही बेची है, न कि उसमें गड़ा हुआ खजाना। इसलिए तुम इस सम्पत्ति के हकदार हो, इसे तुम ले सकते हो।"

प्रतिवादी ने भी उनकी बात नहीं मानी। वह बोला, "बेच दी गई जमीन की कोई भी चीज अब मेरी नहीं हो सकती। इस थाती को मैं लूँ, तो समझिये न्याय और धर्म का गला घोंट रहा हूँ। ऐसा अपराध मुझसे नहीं होगा। आप मुझे क्षमा करें।"

दरबारी लोग चिंता में पड़ गये कि इस मामले की सुलह कैसे होगी। बूढ़े न्यायाधीश थोड़ी देर सोच लेने के बाद फैसला सुनाने को तैयार हो गये। उन्होंने वादी से पूछा, !

"महाशय! आपकी कितनी संतान हैं?"

वादी ने जवाब दिया, "मेरी एक बेटी है, बस।"

उसकी आयु कितनी है? वह कैसी है?"

सोलह साल की है। वह सुंदर, सुशील और सुशिक्षित लड़की है।"

"अच्छी बात है।" यह कहकर न्यायाधीश ने प्रतिवादी से पूछा, "आपकी कितनी संतान हैं?"

"अजी! एक ही बेटा है। वह अभी बीस साल का हुआ है।"

"वह क्या करता है? उसका चाल-चलन कैसा है?"

"वह पढ़ा-लिखा और भला-चंगा युवक है। खेती-बारी में मदद करता है और अवकाश के समय विद्यालय में जाकर बच्चों को पढ़ाता है।"



न्यायाधीश ने मुस्कराते हुए कहा, "देखो, तुम दोनों मेरा यह सुझाव मानो। तुम दोनों अपनी संतानों का आपस में विवाह कर दो। इससे तुम दोनों के मामले सुलझ जाएंगे। तुम दोनों संबंधी बन जाओगे यही मेरा फैसला है।"

यह फैसला सुनते ही दरबार में प्रसन्नता की लहर-सी छा गई। दोनों महाशयों को यह फैसला बहुत पसंद आया। दोनों ने न्यायाधीश को प्रणाम किया और साधुवाद दिया।

न्यायाधीश ने उससे कहा, "तुम्हारी संतानों का शुभ विवाह इस राजमहल में धूमधाम से होगा। तुम दोनों के परिवार मिलकर एक शुभ दिन निश्चित करें और उस दिन बंधु-मित्रों के साथ यहाँ आ जाएँ। राजा की तरफ से तुम लोगों को यह निमंत्रण दे रहा हूँ।"

उसी समय न्यायाधीश ने नकली दाड़ी-मूँछ, पहनावा सब निकाल दिया, तो सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। वह और कोई नहीं, किशोर राजा करिकालन ही था।



इसी प्रकार चोल राजा करिकालन ने राज्य के हर मामले का निपटारा बुद्धिमता से किया और बड़ा यश पाया। उस वीर प्रतापी राजा ने कई लड़ाइयाँ जीतकर अपने राज्य को फैलाया। उसने प्रजा के हित के लिए कई विद्यालय, देवीमंदिर, कलाकेंद्र, चिकित्सालय आदि खोले थे। वह बड़ा विद्याप्रेमी और कलाप्रेमी था।

राजा करिकालन ने काबेरी नदी पर सबसे पहले बड़ा बांध बनवाया, जो आज भी मौजूद है। इस बाँध के सहारे चोल राज्य भर में खेंती-बारी और सिंचाई की सुविधाएं बढ़ी हैं।

□□

4

दानी कुम्णन

दो हजार साल पहले तमिलनाडु में मुदिरम् नाम का एक पहाड़ी प्रदेश था। वहाँ कुम्णन नाम का राजा शासन करता था। वह बड़ा दानी, प्रजावत्सल और न्यायपालक था। वह विद्वानों, कवियों, कलाकारों का आदर करता था। उसके मन में दीन-दुखी लोगों के प्रति सहानुभूति थी। लोग मदद माँगने उसके पास आया करते थे। वह याचकों की माँग आदरपूर्वक पूरी करता था।



एक बार पड़ोसी राज्य में अकाल पड़ा। वहाँ से कई परिवार कुम्णन के पास राहत पाने के लिए आए। सब के सब भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे। बाल-बच्चे भूख से बिलख रहे थे। बूढ़े लोगों की हालत और खराब थी। कुम्णन ने तुरंत अपने महल में ही बढ़िया भोजन बनवाया। अकाल पीड़ित परिवारों को भी राजपरिवार के साथ, बिठाकर भोजन खिलाया, इसी प्रकार कई दिन तक राजमहल में रखकर उनका पालन-पोषण किया।

तमिलनाडु के कोने-कोने से कवि, पंडित, कलाकार और साधु-संत कुम्णन के पास आते, आदर-सत्कार पाते और भेंट-उपहार लेकर लौट जाते थे। उस जमाने के कवि, विद्वान, कलाकार बड़े स्वाभिमानी ओर सच्चे समाजसेवी थे। वे राजा-प्रजा के हितैषी और मार्गदर्शक भी थे। वे लोग अपने लिए धन-सपत्ति जमा नहीं करते थे। उनका पालन-पोषण राजा की ओर से आदर के साथ हुआ करता था।

राजा कुम्णन के ऐसे ही दो हितैषी थे। महापंडित चान्तनार और महाकवि चित्रनार। जब भी उनको किसी चीज की जरूरत पड़ती, कुम्णन के पास चले आते और उनसे माँगकर ले जाते। कुम्णन उन दोनों विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उन्होंने कुम्णन की दान-शीलता और उदारता की प्रशंसा में कई सुंदर गीत गाये हैं। घुमंतु चारण-भाट गायकों ने उन कीर्तिगानो को गाते हुए तमिल प्रदेश के कोने-कोने में कुम्णन का यश फैलाया।

एक दिन महाकवि चित्रनार कुम्णन से थोड़ा धन माँगने के लिए आये। उस समय कुम्णन जरूरी राजकाज में लगा हुआ था। इसलिए महाकवि का संदेश पाते ही राजा ने अपने मंत्री के हाथ कुछ धन देकर उनके पास भेज दिया।

महाकवि को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मंत्री के दिये धन को स्वीकार नहीं किया। सीधे राजा कुम्णन के पास चले आये और बोले, "मेरे प्रिय नरेश! मैं तुमसे मिलने और तुम्हारे हाथों से उपहार पाने आया हूँ। मुझे मामूली याचक न समझ बैठना। तुम दूसरे के हाथों विपुल संपत्ति भी भेज दो, मैं लूंगा नहीं। तुम स्नेहपूर्वक रत्ती-भर वस्तु भी दे दो, काफी है, सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।

कुम्णन महाकवि की झिड़की सुनकर लज्जित हुआ। उसने अपनी गलती के लिए महाकवि से क्षमा मांगी। उसको इसी महाकवि की एक पुरानी बात याद आयी। वे एक बार पड़ोसी प्रदेश के राजा वेलियान के महल में गये थे। उस समय वह आराम कर रहा था। महाकवि के आने का समाचार मिला। उनका स्वागत करने वह स्वयं ने आया अपने भाई से बोला, "तुम उनका स्वागत-सत्कार करो। थोड़ा धन देकर उनको विदा करके आओ।"

महाकवि चित्रनार ने देखा कि राजा वेलियान स्वयं न आकर अपने भाई को भेज रहा है। वे तुरंत वहाँ से उठकर चले आये और कुम्णन के पास गये। कुम्णन ने उनका आदर के साथ स्वागत किया। महाकवि ने कुम्णन की प्रशंसा में सुंदर गीत गाये। कुम्णन ने बहुत हर्षित होकर उनको एक सजा-धजा हाथी और धन-राशि देकर विदा किया।

महाकवि चित्रनार उस हाथी को लेकर वेलियान के महल में गये और उनसे कहा, "मेरे राजा! यह लो मेरी ओर से यह उपहार। जब तुम्हारे पास मेरा सम्मान करने के लिए फुर्सत नहीं है, तो क्या हुआ? मेरे पास तुम-जैसे राजाओं का आदर करने के लिए समय है, सामर्थ्य भी है।"



राजा वेलियान लज्जित हुआ। वह महाकवि के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा।

कुम्णन को यह घटना याद आई। उसने निश्चय कर लिया कि आगे से ऐसी गलती मुझसे नहीं होनी चाहिए।

कुम्णन के दूसरे मित्र थे महापंडित चात्रनार वे भी समय-समय पर आकर राजा से भेंट-उपहार लिया करते थे। वे उदार स्वभाव के थे; उनको जो कुछ मिलता, उसे अपने गरीब रिश्तेदारों के साथ बाँट लेते थे। थोड़े समय के बाद महापंडित चात्रनार के पास कुछ नहीं बचा। अपना परिवार चलाना भी मुश्किल हो गया। मुखमरी की नौबत आ गई। तब उन्हें दानी राजा कुम्णन की याद आई। वे उनसे मिलने मुदिरम नगर में आये। किंतु वहाँ स्थिति एकदम बदली हुई थी।



कुम्णन का एक सौतेला छोटा भाई था । इलकुम्णन । वह सत्तालोभी चालाक आदमी था । उसने दंगा करके राजगद्दी हथिया ली और अपने बड़े भाई को राज्य से ही अलग कर दिया ।

शांतिप्रिय कुम्णन अचानक हुए दंगे को दबा नहीं सका। उस समय की लड़ाई में वह हार गया। राजपाट छोड़कर उसी पहाड़ी प्रदेश के जंगल में कुटिया बनाकर अपने परिवार के साथ रहने लगा वह दानी कुम्णन। फिर भी उसी का नाम यश उस प्रांत में ऊँचा था।

नये शासक इलंकुम्णन ने सोचा, "बड़े भाई के रहते मुझे कोई नहीं मानेगा और मेरी शासन-सत्ता भी स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए उनको इस दुनिया से ही अलग कर देना चाहिए.....।"

बस, दूसरे ही दिन इलंकुम्णन ने राज्यभर में ढिंडोरा पिटवाया कि जो व्यक्ति मेरे पराजित भाई का सिर काटकर लायेगा, उसे एक हजार स्वर्णमुद्राएं भेंट की जाएंगी।

इस घोषणा को सुनते ही लोगों में खलबली मच गयी। सभी प्रजाजन नये शासक इलंकुम्णन से घृणा करने लगे और उसकी निंदा भी। इस नीचतापूर्ण घोंषणा की सभी ने अवहेलना कर दी।

महापंडित चात्रनार अपने दानी मित्र कुम्णन की दुर्दशा जानकर बहुत दुखी हुए।

वे उसको खोजते हुए जंगल में गये। कुम्णन से मुलाकात हुई। दोनों स्नेह से गले मिलकर रो पड़े। भाग्य का यह कैसा क्रूर खेल है। लाचारी का अहसास दोनों को अधिक सताने लगा।

कुम्णन भाँप गया कि हितैषी मित्र चात्रनार।तंग हालत में हैं, मुझसे मदद लेने आये हैं। उसको अपनी दुर्दशा पर बहुत खेद हुआ। वह सोचने लगा, "मैं कितना अभागा हूँ। घर आये आदरणीय अतिथि का सत्कार करने और इनकी मदद करने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। ऐसे निकृष्ट जीवन से लाभ ही क्या है?"

कुम्णन ने निश्चय किया कि वे मित्र महापंडित को खाली हाथ नहीं जाने देंगे। उसने चात्रनार से निवेदन किया, "मेरे आदरणीय बंधु, आप मेरी यह तलवार लीजिए। इससे मेरा सिर काटकर ले जाइये और मेरे भाई को सौंप दीजिए। वह आपको हजार स्वर्णमुद्राएं भेंट करेगा। उस धनराशि से आप पहले की त्रह अपने परिवार तथा नाते रिश्ते के लोगों का पालन-पोषण करें।

दानी कुम्णन की यह बात सुनते ही चात्रनार सिहर उठे, बिलख-बिलखकर रो पड़े। वे अपनी तंगी और तकलीफ भूल गये। वे सोचने लगे, "यह कुम्णन कितना महान दानवीर है। ऐसे त्याग पुरुष की यह दुर्दशा नहीं होनी चाहिए। इस विपत्ति से इसको उबारना मेरा कर्त्तव्य है। अब मैं यही करूँगा....।"

चात्रनार ने कुम्णन से तलवार ली और कहा, "मेरे प्रिय मित्र! तुम मेरे लौट आने तक सब्र करो। मैं वापस आकर तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

चात्रनार जंगल से लौटकर नगर के प्रसिद्ध शिल्पी के यहाँ पहुँचे। उन्होंने उस शिल्पी से कुम्णन का कटा हुआ सिर जैसा ही एक सिर मोम का बनवाया। वे उस सिर को कपड़े से ढ़ककर राजमहल में ले गये।

इलंकुम्णन राजगद्दी पर बैठा हुआ था। सामने गण-मान्य दरबारी लोग थे। महापंडित चात्रनार ने कटे हुए सिर को राजा के सामने रखा और कहा, "नये शासक! यह लो, तुम्हारे ऐलान की भेंट। अब तो तुम्हारा दिल ठंडा हुआ न? लेकिन, हाँ यह न भूलो कि इस अत्याचार से तुम्हारा जीवन और शासन संकट से मुक्त हो गया।"

खून से सना और कटा हुआ सिर देखते ही इलंकुम्णन भौंचक रह गया। उसको विश्वास हो चुका था कि पूरे प्रदेश में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिलेगा जो धन के लालच में कुम्णन की हत्या करने को तैयार हो जाए। ऐसी हालत में इस अनहोनी घटना से वह विचलित हो उठा। उसकी मानवता जाग उठी। शोक और पश्चाताप की आग में वह



झुलसने लगा। लज्जा के कारण उसका सिर झुक गया। उसने दबे स्वर में कहा, "महापंडित! आपने यह क्या कर दिया! मैं सत्ता के मोह में पड़कर भाईचारा, सद्भाव और शील सब भूल बैठा। आप तो बड़े विद्वान् हैं और मेरे बड़े भाई के मित्र भी हैं। आपके हाथों यह पाप कैसे हो पाया?"

चात्रनार इलंकुम्णन के हृदय परिवर्तन से आश्वस्त हुए। वे शान्त भाव से बोले, "युवराज! तुमसे इसी हृदय परिवर्तन की आशा मुझे थी। इसीलिए मेंने यह उपाय किया है। तुम्हारे बड़े भाई दानी कुम्णन जंगल में भले चंगे हैं। यह उनका नकली सिर है जो मोम का बना है। अब तो तुम्हें अपने किये पाप का प्रायश्चित करना है। करोगे?"

इलंकुम्णन ने हाथ जोड़कर चात्रनार से क्षमा माँगी और प्रार्थना की, "महापंडित जी! आज्ञा दीजिए। मैं अपने प्राण तक देने को तैयार हूँ।"

चात्रनार ने उसे समझाया, "युवराज! तुम बड़े भाई को आदर के साथ वापस बुला लाओ। उनको यह राजगद्दी सौंप दो। इस प्रान्त के पुराने राजा लोग बड़े दानी नीतिपालक और विद्याप्रेमी थे। तुम्हारे पूर्वज राजाओं ने अच्छे-भले काम कर बड़ी ख्याति पायी है। हमारे राजा पारि इतने उदार दानी पुरुष थे कि प्राणिमात्र से स्नेह और सहानुभूति रखते थे। एक बार उन्होंने रास्ते में चमेली की लता को बेसहारा पाया तुरंत वे रथ से उतरे और अपने रथ को ही चमेली लता का अवलंब बनाकर वहीं छोड़ गये।"

"दूसरे दानी नरेश बेकन एक बार मोर को नाचते हुए पाकर, उसको निहार रहे थे। अचानक बारिश आ गई। विचारा मोर ठंड से ठिठुरने लगा। तुरंत राजा बेकन ने अपना कीमती रेशमी वस्त्र उतारकर भींगे मोर पर ओढ़ा दिया। इस प्रकार तुम्हारे पूर्वज राजा आदिकमान ने भी अपनी दानशीलता के कारण बड़ी ख्याति पायी है। एक बार आदिकमान को दैवी अनुग्रह से एक अद्भुत फल मिला। उस फल की विशेषता थी कि उसे खाने वाले को न बुढ़ापा होता, न कोई बीमारी होती, न मौत ही। ऐसे अनूठे फल को राजा आदिकमान ने औवेयार नाम की भक्तिन कवियित्री को खिला दिया। उन्होंने घोषणा की, "राजा से बढ़कर इस समाज के लिए हितकर है कवियित्री औवेयार।" युवराज! तुम भी अपने पूर्वजों की तरह अच्छे काम करके कीर्ति पाओ।"

युवराज इलंकुम्णन ने चात्रनार की सलाह मानी। वह बड़े भाई को आदर के साथ ले आया और उनको राजगद्दी सौंप कर स्वयं युवराज बने।

महापंडित चात्रनार अपने प्रयास की सफलता पर फूले न समाये। वे दोनों भाइयों से भेंट-उपहार पाकर आनन्द के साथ घर लौटे।

□□

5

नेत्रदान

पुराने जमाने में तमिलनाडु का उत्तरी भाग वन प्रदेश में था। उसका नाम पोत्तरिणनाडु था। वहाँ पहाड़ियाँ, झरने, नदी-नाले और झीलें थीं। पहाड़ियों की तलहटी में छोटे-बड़े गाँव बसे थे। उनमें ज्यादातर व्याघ, किरात आदि शिकारी वनजाति के लोग रहते थे। उनके प्रमुख काम थे-जंगली जानवरों का शिकार करना, जाल बिछाकर चिड़ियाँ पकड़ना, मवेशियाँ पालना, गाय-भैसें चराना, खेतीबारी करना, जंगल के रास्ते से गुजरने वाले काफिलों की मदद करना और शहद, फल, मांस, मृगचर्म आदि वस्तुएं नगर में ले जाकर बेचना। वे शिकारी सधे हुए तीरंदाज थे, भाला और तलवार चलाने में भी माहिर थे। मरे जानवरों की खालों से चप्पल, कमीज, अंगरखा, टोपी, कमरबंद आदि बनाते थे।

उडुप्पुर उस प्रदेश का मशहूर गाँव था। वहाँ शिकारियों की बस्तियाँ अधिक थीं। नागन उस गाँव का मुखिया था जो "व्याघराज" के नाम से पुकारा जाता था। उसकी पत्नी का नाम दत्तै था। दोनों की कई वर्ष तक कोई संतान नहीं हुई।

नागन ने अपनी पत्नी के साथ कुलदेवता स्कन्द देव की विशेष पूजाएँ कीं और दोनों ने मनौती मानकर व्रत रखा। विश्वास और श्रद्धा का फल अच्छा ही होता है। कई साल के बाद दत्तै ने एक बच्चे को जन्म दिया। व्याघराज नागन ने इस खुशी में अपने कुलदेवता स्कंददेव का शानदार उत्सव मनाया।

आसपास के गाँवों से भी व्याघ जाति के लोग उस आनंद-उत्सव में शामिल हुए। उसमें भेंट-चढ़ावा, नाच-गान, और प्रीतिभोज का प्रमुख स्थान था। नागन और दत्तै ने अपने बच्चे का नाम तिण्णन रखा। तिण्णन का मतलब है, हृष्टपुष्ट। वह बच्चा सचमुच सुंदर और सुडौल था।

तिण्णन बड़ा होनहार लड़का था। बचपन से ही अपनी धुन का पक्का था। उसने

गुरुजनों से भक्ति, वीरता- और त्याग की अनेक कहानियाँ सुनी थीं उसके स्वभाव में ही ऊँचा शील संस्कार था। तिण्णन जल्दी ही अपनी कुल-विद्या शिकार खेलना, तीर-तलवार चलाना, कुश्ती लड़ना, पहाड़ों पर चढ़ना सीख गया। वह शिवजी का भक्त था। प्रतिदिन मन लगाकर पूजापाठ किया करता था।



तिण्णन नौजवान हुआ। वह पूरे गाँव का दुलारा था। गाँव ने जलसा मनाकर एक शुभ दिन उसे युवराज का पद दिया। उनके समाज में हर नया काम जलसा मना कर ही शुरू किया जाता था। दूसरे दिन तिण्णन अपने साथियों के साथ शिकार खेलने जंगल में गया। यह उसका पहला शिकार था।

तिण्णन बड़ी निडरता से खुंखार जानवरों का शिकार करता हुआ जंगल में बहुत दूर निकल गया। उसके साथ थे शिकारी कुत्ते और तुरही, ढोलक, पटह आदि बजाने वाले। तिण्णन की फुर्ती और हिम्मत देखकर सभी साथी दंग रह जाते थे।

तभी एक जंगली सुअर उन पर तेज दौड़ पड़ा। उसके दो अंगरक्षक साथी नाणन और काडन दोनों उसके पीछे दौड़ पड़े। तिण्णन का एक तीर उस जंगली जानवर को जा लगा। फिर भी वह सुअर भागता ही रहा। तिण्णन ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसने ठान लिया था कि इस क्रूर जानवर का काम तमाम करके ही दम लेगा।

सुअर भागते-भागते बहुत दूर एक पहाड़ी के पास जाकर रुका। वहीं हाँफता हुआ जमीन पर लेट गया। तिण्णन के नजदीक आते ही, उस पर झपट पड़ा। तिण्णन तुरंत संभल गया। उसने सुअर पर तलवार से वार किया और उसके दो टुकड़े कर दिये।

पीछे दौड़ आये दोनों अंगरक्षक साथियों ने तिण्णन का यह शौर्य देखा। वाह-वाह

करते हुए उसे गले लगा लिया। वे खुशी में नाचने लगे। उनके युवराज तिण्णन की यह पहली विजय थी।

तीनों शिकारी थके-मादे तो थे ही, साथ ही भूख-प्यास भी सताने लगी। साथियों ने कहा, "भाई तिण्णन। हम इस शिकार के मांस को यहीं आग में भूनकर भोजन तैयार करेंगे, यहाँ शहद और फल बहुत मिलते हैं। पास ही पोन मुकलि नाम का सुंदर झरना है। हम उसमें स्नान करेंगे, खाना खाकर यहीं विश्राम करेंगे। फिर शाम को वापस जाएंगे।

तिण्णन को भी यह सुझाव जँचा। तीनों मित्र झरने में नहाए। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुंदर था। उन्हें पहाड़ी पर एक छोटा-सा पुराना मंदिर दिखाई पड़ा। तिण्णन का कुतूहल बढ़ा। उसने चाहा कि उस मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन करें।

तिण्णन ने साथी काडन से कहा, "तुम भोजन तैयार करो। तब तक हम दोनों मंदिर में होकर आते हैं।"

वह तुरंत दूसरे साथी नाणन को लेकर मंदिर में गया। वहाँ शिवजी का मंदिर था। वहाँ भगवान की भव्य मूर्ति देखकर तिण्णन का मन भक्ति भावना से भर उठा। उसको लगा कि मैं पूर्व जन्म में यहीं पला हूँ। वह सोचने लगा कि अब मेरे लिए यही घरबार है। मैं यहीं रहकर भगवान शिव की सेवा करूँगा। यही मेरे जन्म का लक्ष्य होगा।





तिण्णन ने गद्‌गद होकर भगवान के सामने कहा, "ईश्वर! तुम यहाँ कैसे अकेले रहते हो? तुम्हारी देखभाल यहाँ कौन करता है। यहाँ तो जंगली जानवर, सांप, बिच्छू घूमते-फिरते हैं। इनसे तुम्हारी रक्षा मैं करूँगा। मैं यहीं तुम्हारे साथ रहूँगा।

तिण्णन के इस संकल्प पर साथी नाणन घबरा उठा। वह समझाने लगा, "भाई! यहाँ ब्राह्मण पुजारी प्रतिदिन आकर पूजा करते हैं। उनको यहाँ के लोग "शिवाचार्य" कहते हैं। वे परम शिव भक्त हैं। वे स्वयं शिवजी का अभिषेक (स्नान) करते हैं, फूल और नैवेद्य चढ़ाते हैं। इसलिए तुम चिंता मत करो। चलो, हम घर लौट चलेंगे, तुम्हारे माता-पिता चिन्तित होंगे, तुम चाहो तो हम महीने में एक बार भगवान की पूजा करने इधर आया करेंगे। अब तुम चलो, मुझे बहुत भूख लग रही है।"

तिण्णन चुपचाप मंदिर के नीचे उतरकर तलहटी में आया। वहाँ मित्र ने भोजन तैयार कर रखा था। तिण्णन ने एक पत्तल में थोड़ा भोजन लिया। मुँह में पानी भर लिया। वह मंदिर की ओर चल पड़ा। उसके दोनों साथी देखते ही रह गये। वे दुखी और चिन्तित थे।

तिण्णन ने मुँह में भरे पानी से शिव जी की मूर्ति को नहलाया। साथ लाये भोजन को नैवेद्य के रूप में भगवान के सामने रखा। वह निवेदन करने लगा, "भगवान्! पता नहीं, तुम कब से भूखे हो? यह भोजन स्वीकार करो और आराम करो। मैं इसी तरह कल शाम को यहाँ आ जाऊंगा। तुम्हारी सेवा करूंगा।"

बाद में तिण्णन नीचे मैदान में लौट आया। तब तक अंधेरा हो गया था। दोनों साथी उसका इंतजार कर रहे थे। तिण्णन ने दृढ़ स्वर में कहा, "साथियो! तुम दोनों गाँव लौट जाओं मैं यहीं रहूँगा। भगवान शिवजी की सेवा करूँगा। यह मेरा निर्णय है।"

दोनों साथी उडुप्पुर गाँव लौट आए उन्होंने तिण्णन के माता-पिता से सारा हाल कहा। सब लोग समझ गये तिण्णन के पूर्व जन्म का संस्कार जाग उठा है। अब उसे अपने इरादे से नहीं डिगाया जा सकंता।

इधर तिण्णन रोज नैवेद्य के रूप में कुछ-न-कुछ ले जाता। अभिषेक के लिए अपनी टोपी में पानी भरकर ले जाता। उन्हीं से संध्याकाल में शिव की पूजा करके वापस लौट आता था।

एक दिन सुबह पुजारी शिवाचार्य मंदिर में भगवान के सामने मांस का नैवेद्य और नये फल-फूल देखकर विस्मित हो गए। दुखी होकर बोले कि यह घोर अनाचार कौन करता है? फिर उन्होंने मांस आदि को उठाकर बाहर फेंक दिया। साथ लाये घड़े के जल से उस स्थान को साफ किया और अपने ढंग से पूजा करके चले गए। इसी प्रकार चार दिन बीते।

पुजारी शिवाचार्य से यह अनाचार सहा नहीं गया। इसे रोकने का उपाय सोचते-सोचते थक गये। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की, ईश्वर! यह घृणित अत्याचार मुझसे सहा नहीं जाता। यह सब कैसे होता है? कृपाकर इसे रोकिए।"

उसी दिन रात को शिवाचार्य के सपने में आकर शिवजी बोले, "मेरा एक बड़ा भक्त है वन जाति का युवक, यह सब उसी का काम है। उसकी भक्ति कितनी गहरी है, सच्ची है, इस बात की परीक्षा कल शाम को होगी तुम मंदिर में छिपकर रहो और मेरे उस सच्चे भक्त को पहचानो।"

दूसरे दिन पुजारी शिवाचार्य मंदिर में गये। उन्होंने वहाँ पड़े हुए मांस आदि को हटा कर साफ किया। अपने ढंग से अभिषेक पूजा आदि किया। फिर वहीं छिपकर रहे।

संध्या काल हुआ। तिण्णन शिवपूजा के लिए मंदिर में आये। रोज की तरह



अभिषेक के लिए टोपी में पानी भरकर लाया, नैवेद्य के लिए मांस और फल-फूल। वह शिव मूर्ति को नहलाने आगे बढ़ा। तभी उसने देखा कि शिव मूर्ति की एक आँख से खून बह रहा है। तिण्णन घबरा उठा। वह चिल्लाने लगा, "हाय! ईश्वर। यह कैसे हुआ? किस पापी ने आपकी आँख को घायल किया? मैं उसका नाम-निशान मिटा दूंगा। पहले यह खून बहना बंद हो जाए।"

तिण्णन दौड़ पड़ा और कुछ जड़ी-बूटियाँ बटोरकर लाया। उन्हें पीस कर शिव की घायल आँख में लगा दिया। फिर भी खून का बहाब रुका नहीं। तिण्णन छटपटाता रहा कि इसका इलाज कैसे हो। तुरंत उसको एक उपाय सूझा। उसने अपने तरकस से तीर निकाला। उस तीर से अपनी बाहिनी आँख निकाली। उसे शिवजी की घायल आँख की जगह लगा दी। बस, खून बहना बंद हो गया।

तिण्णन खुशी से उछल पड़ा। इतने में शिवमूर्ति की दूसरी आँख से भी खून बहने लगा। तिण्णन घबरा उठा कि यह कैसा अनर्थ हो रहा है। जो भी हो, इसका इलाज मुझे करना ही है। यह सोचकर, उसने अपनी दाहिनी आँख भी निकालने का निश्चय किया। तब उसको याद आयी, "मैं यह आँख भी निकालूं, तो पूरा अंधा हो जाऊंगा। फिर भगवान की घायल आँख को पहचान नहीं पाऊंगा। इसलिए मैं निशान के तौर पर अपना एक पैर भगवान की घायल आँख के नीचे रख लूं। तब मेरा काम आसान होगा।"

तिण्णन ने वैसा ही किया। फिर वह तीर से अपनी दाहिनी आँख निकालने लगा। इतने में भगवान शिव प्रकट हुए। उन्होंने तिण्णन का हाथ पकड़कर उसे रोकते हुए कहा, "तिण्णन! इसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने तुम्हारी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए ही यह लीला रची है। अपनी यह बायीं आँख ले लो। मेरा आशीर्वाद है कि तुम मेरे परम भक्त कहलाओगे और तुम्हारा यश अमर रहेगा। लोग तुम्हें कण्णप्पर (नेत्रदानी) के नाम से स्मरण करेंगे। नीचे तुम्हारे माता-पिता साथी-संगी तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। तुम उनके साथ गांव लौट चलो।"

तिण्णन ने आनन्द-विभोर होकर शिव को प्रणाम किया।

यह सब देखकर पुजारी शिवाचार्य आश्चर्य-चकित हो गये। वे तिण्णन को "मेरे प्यारे भाई कण्णप्पर! तुम धन्य हो।" —कहकर गले मिले। उन्होंने उसी समय निश्चय किया कि इस परम भक्त की भी यहाँ पूजा होनी चाहिए।

पुजारी ने कण्णप्पर की एक शिलामूर्ति बनवायी। उसे शिवमूर्ति की दाहिनी ओर रखवाया और वे उस मूर्ति की भी पूजा करने लगे।

वह छोटा-सा मंदिर बाद में बड़ा विशाल रूप पा गया। वह पहाड़ी स्थान आजकल तिरूक्कालत्ति (कालहस्ती) के नाम से मशहूर शिव नेत्र हो गया है। उस मंदिर में भगवान शिव के पास ही नेत्रदानी भक्त कण्णप्पर की मूर्ति आज भी विराजमान है।

□□

6

मन में बना मंदिर

बात कई सौ वर्ष पहले की है। उस जमाने में तमिलनाडु का उत्तरी भाग तोण्डैनाडु कहलाता था। वहाँ का एक गाँव था तिण्णनूर।

उस गाँव में एक बड़े संत शिव भक्त थे, जिनका नाम था भक्त पूसलार। वे बड़े विद्वान थे, पवित्र आचार-विचार के व्यक्ति थे। वे प्रतिवर्ष तीर्थ यात्रा पर निकलते और उस गाँव-नगर में ठहर जाते जहाँ शिवजी का मंदिर हो। वहाँ के शिवालय में जाकर, भगवान शिवजी की पूजा करने के बाद ही भोजन और आराम करते। यह उनका दैनिक कार्यक्रम बन गया।

सन्त पूसलार तमिल भाषा के अच्छे कवि भी थे। वे शिवजी पर अनेक भक्ति गीत रचकर के गाया करते थे। साथ ही, पुराने प्रसिद्ध शिव भक्त कवियों की रचनाओं का भी उन्होंने खूब अध्ययन कर रखा था। वे जहाँ भी जाते, शिवजी की महिमा वाली कथाएँ सुना कर मुग्ध कर देते थे।



उस शिवभक्त के मन में एक अभिलाषा थी। वे चाहते थे कि अपनी देख-रेख में एक बढ़िया विशाल शिव मंदिर बनवाऊँ। लेकिन मंदिर बनाना तो कोई खेल नहीं। बहुत-सी धन-सम्पत्ति, साधन-सामग्री की जरूरत पड़ती। गरीब संत व्यक्ति इतनी विपुल संपत्ति के लिए कहाँ जाए? फिर भी उनकी आशा और आकांक्षा क्षीण नहीं हुई। धन जुटाने के प्रयास में निरंतर लगे रहे।

कुछ साल बीत गए। संत पूसलार ने कई धनिकों, सामंतों और रहीशों के पास जाकर प्रार्थना की, सहायता मांगी। किंतु सब लोगों ने थोड़ा-सा धन देकर विदा किया। साथ ही यह समझाने लगे, "शिवालय बनाना आपके बस की बात नहीं है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी ऐसे कामों से कतराते हैं, तो आप किस खेत की मूली हैं? बने-बनाये मंदिरों का तीर्थाटन करते रहें, यही बहुत है।"

फिर भी उस शिवभक्त का मन हार मानने को तैयार नहीं था। अपने पुनीत प्रयास में बराबर लगे रहे। रात-दिन अपनी धुन में जी रहे थे। वे मन में ही मंदिर का ढांचा बना रहे थे। एक-एक भाग को ध्यान से और जतन से पूरा करते जा रहे थे। कई शिवालयों के बारीकी से संदर्शन कर चुके थे। इसलिए उनके मन में पूरे मंदिर का रूप बन गया था।

संत पूसलार ने मानसिक रूप से ही पत्थर, ईंट, गारा, चूना, कांठ, शिल्पी, कारीगर, मजदूर, इत्तर साधन-सामग्री सब इकट्ठा किया। शिवागम में बताये नियमों के अनुसार पूजा-हवन, मंत्र-पाठ आदि उपक्रम के साथ मंदिर का निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया। ऐसी मंदिर की कल्पना भी अनुठी थी।

वह शिवभक्त संत जाने-पहचाने लोगों से कहा करते थे कि मेरे मानसिक मंदिर में अमुक भाग का काम चल रहा है। अब तक यह भाग पूरा हुआ है। कल से फलाना हिस्सा शुरू होगा। साथ ही पूरे हुए भाग का संजीव वर्णन करते थे कि मानों सामने ही वह भाग मूर्त रूप से दिखाई पड़ता हो।

कई दिन बीत गए।

मन-मंदिर का निर्माण बढ़ता चला जा रहा था। मंदिर के परकोटे, गोपुर, प्रधान द्वार, ध्वज स्तंभ, दरबार मंडप, सन्निधि कक्ष, भंडार कक्ष, वाहन-प्रतिभाएँ, रथ, पालकी, आदि भाग पूरे हुए। फुलवारी, पुष्करिणी (तालाब), कुएं, गौशाला, हाथी वाला मंडप आदि भी तैयार हो गये। शिवजी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करने का काम ही बाकी था। संत पूसलार ने मूर्ति प्रतिष्ठा और कुंभाभिषेक के लिए शुभ दिन निश्चित कर लिया। भगवान शिवजी से प्रार्थना की-

"मेरे प्रभु! आपके लिए इस गरीब से इतना ही बन पड़ा है। मेरे मन-मंदिर में आपकी मूर्ति की प्रतिष्ठापन आप ही की कृपा से होनी है। आप उस शुभ दिन में पधारें और मेरे इस मन-मंदिर में प्रतिष्ठित होकर मुझे कृतार्थ करें।"

सच्चे भक्त की माँग पूरी करने के लिए भगवान भी खुशी से आगे बढ़ते हैं। हुआ भी वही था।

लोग समझते थे कि संत पूसलार शिवभक्ति में पागल हो गये हैं। वे हमेशा अपने मन के काल्पनिक मंदिर के बारे में ही सोचते, बोलते और काम करते थे। उनको किसी की परवाह नहीं थी। वे अपने संकल्प में पूरा मग्न थे, अपनी परिकल्पना में लीन थे।

वह शुभ दिन आ गया। उसी दिन संत शिवभक्त ने अपने मन-मंदिर में शिवजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का निश्चय कर रखा था। संयोग से, उसी दिन, उसी समय, काँचीपुरम् के राजा ने भी अपने बनवाये मंदिर में शिवमूर्ति के प्रतिष्ठापन का शुभ मुहूर्त तय कर रखा था।

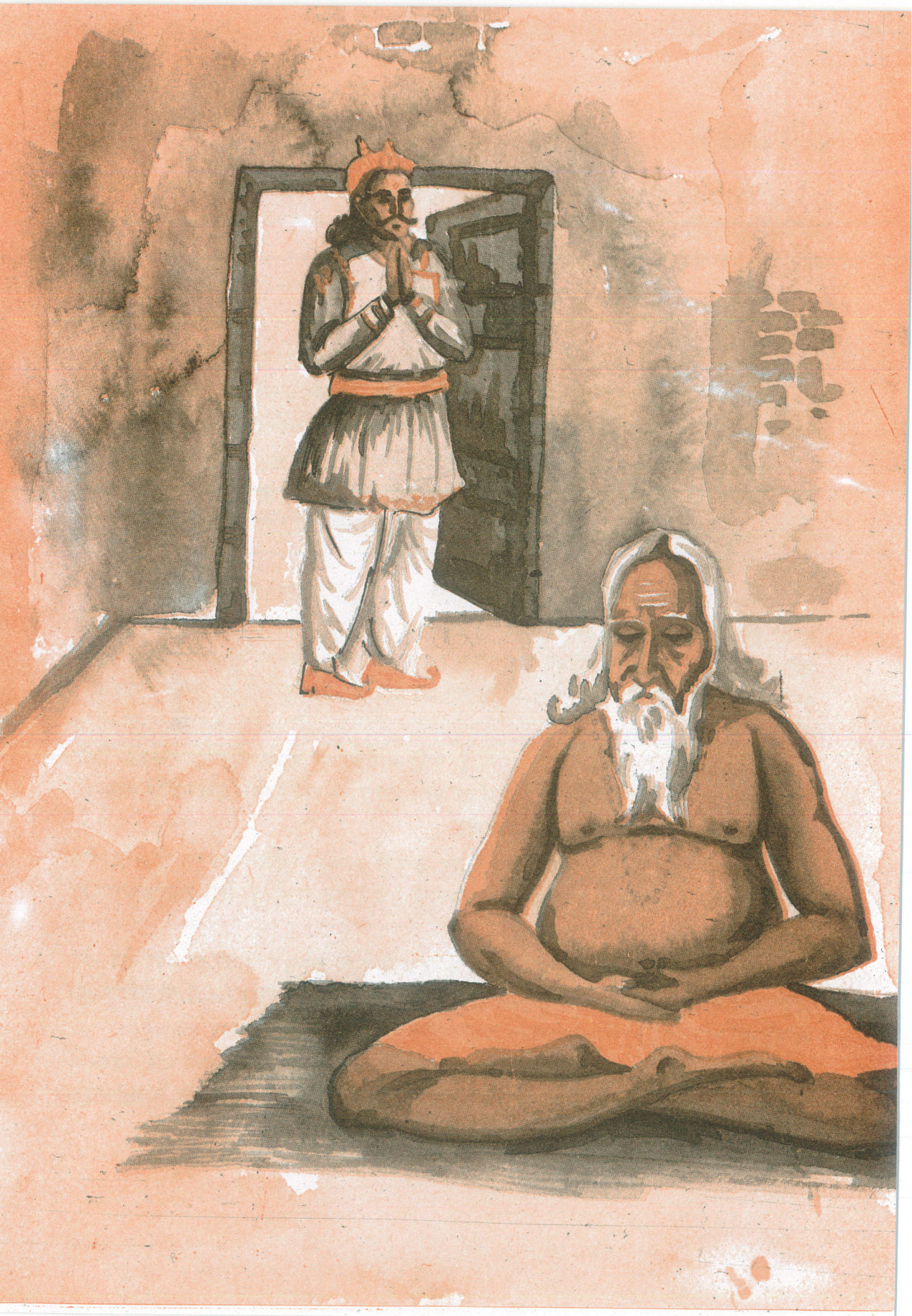
उसके दो दिन पहले, राजा के सपने में शिवजी पधारे और बोले, "कांची नरेश! तुम अपने ईंट-पत्थर वाले मंदिर में मूर्ति-प्रतिष्ठापन और कुंभाभिषेक के उत्सव को किसी और दिन रख लो। मुझे तिण्णनूर वाले भक्त शिरोमणि संत पूसलार के बनाये परम पावन मन-मंदिर में जाना है। उस दिन मेरी मूर्ति का प्रतिष्ठापन वहीं होगा, तुम्हारे बनवाये मंदिर में नहीं।"

नींद टूटी तो राजा अचंभे में आ गया। दैवी आदेश था, टाला नहीं जा सकता। फिर संदेह हुआ था कि ऐसा भी कहीं कोई मंदिर हो सकता है? राजा सोचने लगा कि ठीक है, वहीं जाकर देख आवें, वह मंदिर कैसा है?

दूसरे ही दिन कांची का राजा अपने दल-बल के साथ तिण्णनूर गाँव को चला आया। अचानक राजा के आने से गाँव वाले चकित रह गये। गाँव में मेला-जैसा कोलाहल फैल गया।

राजा ने गाँव वालों से भक्त पूसलार के बारे में पूछा, तो उन लोगों का आश्चर्य और बढ़ गया। वे सोचने लगे, "शिवभक्ति के बावले उस गरीब बूढ़े का नाम कांची नरेश क्यों ले रहे हैं?"

गाँव के लोग राजा को लेकर पूसलार के घर गये। वे शिवभक्त अपने मन-मंदिर में रम रहे थे। शिवजी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करने का समय निकट आ रहा था, कुंभाभिषेक



की तैयारी जोर से हो रही थी। वे अपनी परिकल्पना में तल्लीन थे। राजा की ओर उनका ध्यान नहीं गया।

राजा ने संत पूसलार के चरण छूकर प्रणाम किया और कहा-"संत महात्मा! परसों रात को सपने में भगवान शिवजी ने मुझे आदेश दिया कि मैं अपनें मंदिर में शिवमूर्ति की स्थापना बाद में करूँ। भगवान शिवजी ने यह भी बताया कि वे आज आपके मंदिर में विराजने वाले हैं। मैं आपके मंदिर का दर्शन करना चाहता हूँ। मुझ पर कृपा कीजिए।"

यह सुनते ही संत पूसलार चकित रह गये। उन्होंने राजा का स्वागत किया और विनयभाव से कहा-"कांची नरेश की जय हो। श्रीमान जी, बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप शुभ संदर्भ में पधारे हैं। इस गरीब का गौरव बढ़ाया आपने।"

राजा ने प्रार्थना की, "संत जी, आपके बनाये शिव-मंदिर का दर्शन करना चाहता हूँ।"

भक्त पूसलार जी भावविभोर होकर बोले, "आप भी बड़े शिवभक्त हैं। धन वैभव के स्वामी हैं। मैं तो गरीब आदमी हूँ। पर मेरे मन में बहुत दिनों से एक विशाल शिवमंदिर बनाने की अभिलाषा रही। मैंने देश-भर में घूम-घूम कर धन संग्रह करने का प्रयास किया। लेकिन बहुत कम धन ही इकट्ठा कर सका। उससे एक मंडप बनाना भी संभव नहीं होगा।"

"फिर आपने शिवमंदिर कैसे बनाया जिसका उल्लेख स्वयं भगवान शिवजी ने मुझसे किया था?" -राजा ने बड़े चाव से पूछा।

पूसलार जी बोले, "राजन! मंदिर तो मैंने विधिवत् बनाया और वह भी बड़ा भव्य मंदिर। मैंने अपने मन में ही बड़े शिवालय का शिलान्यास रखा, फिर धीरे-धीरे पूरे मंदिर का निर्माण कर दिया। अब आप सुनिये मेरे मन-मंदिर का स्वरूप।"

राजा और उसके दरबारी लोग बड़े कोतुहल के साथ संत पूसलार की बात सुनने लगे। संत ने अपने मन में बनाये मंदिर के एक-एक हिस्से का बयान बिस्तार से किया। सुनने वाले अभिभूत हो गये।

राजा के साथ दरबारी शिल्पी, कारीगर, अभियंता, चित्रकार आदि भी आये हुए थे। वे लोग संत जी के मुँह से भव्य शिवालय का सजीव वर्णन सुनकर आश्चर्य चकित रह गये।

पूरे शिव मंदिर का वर्णन करने के बाद, भक्त पूसलार ने सब लोगों को कुंभाभिषेक के समारोह में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया।

सब लोगों ने सुना-

मंगल वाद्य बजने लगे, वेदमंत्रों का पाठ गूंज उठा, भक्तजनों के कंठों से जयघोष के नारे निकलते रहे। कुंभाभिषेक और शिवजी का प्रतिष्ठापन का पूरा दृश्य वहाँ उपस्थित लोगों के मन में साकार हो उठा।

"धन्य संत शिरोमणि पूसलार जी!
जय हो भगवान शिवजी की।"

-सारी दिशाओं में ये नारे गूंजने लगे।

कांची नरेश ने उसी समय अपने राज्याधिकारियों को आदेश दिया–

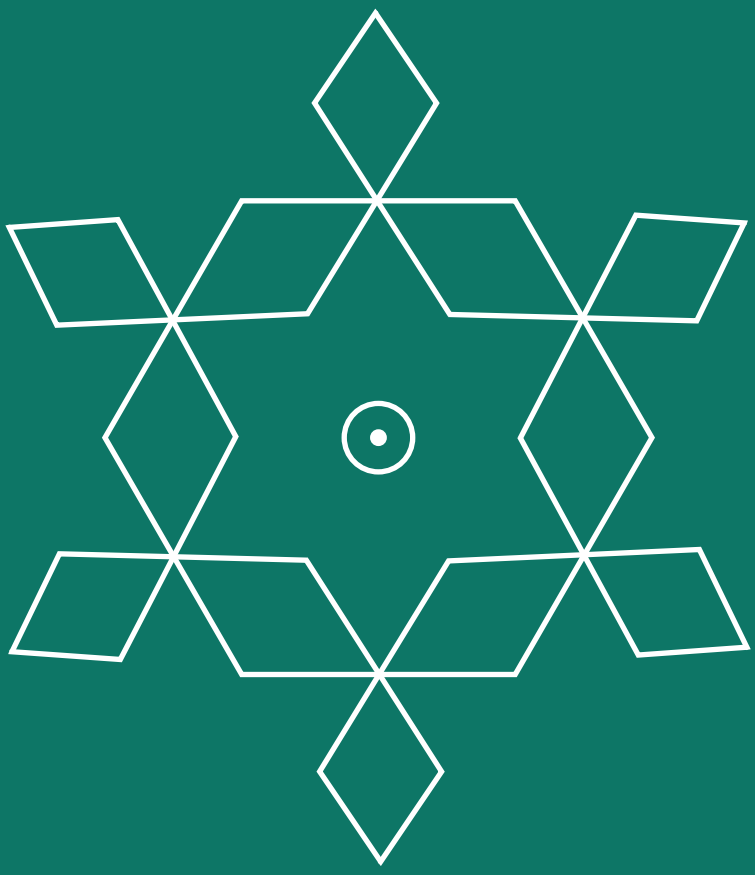
"इस तिण्णनूर गाँव में वैसा ही एक शिवमंदिर का निर्माण करो, जैसा कि अब संत पूसलार जी ने बयान किया है।"

फिर क्या? राजा की आज्ञा थी और उसकी पूरी लग्न भी थी, एक ही वर्ष में मंदिर बनकर तैयार हो गया। संत पूसलार अपने मन-मंदिर को ही ईंट-पत्थर वाले दृश्यमान मंदिर के रूप में पाकर आनंद से फूले न समाये।

राजा ने उस मंदिर का नाम "संत पूसलार का मन-मंदिर" रखा। वहाँ प्रतिष्ठित हुए शिवजी "मन-मंदिर के नाथ" के नाम से प्रशस्त हुए। उस मंदिर के अंदर राजा ने संत पूसलार की मूर्ति भी रखवायी।

यह मंदिर और उस संत की मूर्ति आज भी तिण्णनूर गाँव में देखने को मिलती हैं।

□□



1929
विद्ययाऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5580-023-7